मध्यकालीन साहित्य में भक्ति एवं प्रेम साधना का स्वरूप

(Form of Devotion and Love Practice in Medieval Literature)

सुमुत सिंह

मध्यकालीन साहित्य में भक्ति एवं प्रेम साधना का स्वरूप

मध्यकालीन साहित्य में भक्ति एवं प्रेम साधना का स्वरूप

(Form of Devotion and Love Practice in Medieval Literature)

सुमुत सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5636-3

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

मध्यकालीन साहित्य का पहलू एकमात्र भक्ति ही नहीं था। 'किस्सा' और 'वार' के नाम से प्रसिद्ध पंजाबी की प्रेम गाथाएं वीरोचित काव्य मध्यकाल में पंजाबी के लोकप्रिय रूप थे। पंजाबी की सबसे अधिक प्रसिद्ध प्रेम गाथा हीर रांझा है जो मुस्लिम कवि वारिस शाह की एक अमर पुस्तक है। गांव के भाटों द्वारा मौखिक रूप से गायी गई पंजाबी की एक लोकप्रिय गाथा नादिरशाह का नजबत वार है। वार पंजाबी काव्य, संगीत और नाटक का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप है, इन सभी का एक में समावेश किया गया है और यह प्रारम्भिक युग से ही प्रचलन में है। 1700 और 1800 ई. सन् के बीच, बिहारी लाल और केशव दास जैसे कई कवियों ने हिन्दी में शृंगार (रचनात्मक भावना) के पंथनिरपेक्ष काव्य का सृजन किया और बड़ी संख्या में अन्य कवियों ने काव्य की सम्पूर्ण शृंखला का विद्वत्तापूर्ण लेखा-जोखा पद्य के रूप में लिखा है।

मध्यकालीन युग में एक भाषा के रूप में उर्दू अपने अस्तित्व में आई। भारत की मिश्रित संस्कृति के एक प्रारम्भिक वास्तुशिल्पकार और सूफी के एक महान कवि अमीर खुसरो (1253 ई. सन्) ने सर्वप्रथम फारसी और हिन्दी (तब इसे हिन्दवी कहते थे) में ऐसी मिश्रित कविता पर प्रयोग किया, जो कि एक नई भाषा का आरंभ था, जिसकी बाद में उर्दू के रूप में पहचान हुई। उर्दू ने अधिकांशत: काव्य में फारसी रूपों तथा छन्दों का पालन किया, लेकिन कुछ शुद्ध भारतीय रूपों को भी अपनाया है–गजल (गीतात्मक दोहे), मरसिया

(करुणागीत) और कसीदा (प्रशंसा में सम्बोधि गीत) ईरानी मूल के हैं। सौदा (1706-1781) मध्यकालीन युग के अन्त के कवियों में से थे और इन्होंने उर्दू काव्य को वह ओजस्विता और बहुमुखी प्रतिभा दी, जिसे प्राप्त करने के लिए उनके पूर्ववर्ती कवि संघर्ष करते रहे थे। इनके पश्चात् दर्द (1720-1785) और मीर तकी मीर (1722-1810) आए जिन्होंने उर्दू को एक परिपक्वता और विशिष्टता प्रदान की और इसे आधुनिक युग में ले आए।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**मध्यकालीन साहित्य**	**1**
	भक्ति में कवयित्रियां	3
	मध्यकालीन साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां	3
	आधुनिक भारतीय साहित्य	4
	राष्ट्रीयता, पुनर्जागरणवाद और सुधारवाद का साहित्य	6
	भारतीय स्वच्छंदतावाद	8
	महात्मा गाँधी का आगमन	9
	प्रगतिशील साहित्य	10
	आधुनिक रंगशाला का निर्माण	11
	आधुनिकता की तलाश	12
	स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय साहित्यिक परिदृश्य	14
	दलित साहित्य	15
	पौराणिकता का प्रयोग	16
	समकालीन साहित्य	17
2.	**सूरदास**	**20**
	जीवन परिचय	20
	सूरदास का काव्य	24

भावपक्ष 25
वस्तु-वर्णन 25
प्रकृति-चित्रण 26
कलापक्ष 26
काव्य-शैली 27
भाव-चित्रण संबंधी गेय पद 27
सूरदास की रचनाएँ 28
सूरदास की भक्ति भावना 33
दास्य भाव भक्ति 34
3. कबीर 36
जीवन 36
भाषा 37
कृतियां 37
धर्म के प्रति 38
कबीर के राम 39
कबीर की भक्ति 41
कबीर का साहित्यिक परिचय 50
कबीर साहित्य 60
4. रसखान 72
रसखान के दोहे महावन, मथुरा 73
जन्म स्थान 73
दिव्य धाम यात्रा 81
अनन्य भाव 84
मिलन 86
बाल-लीला 86
रूप-माधुरी 87
प्रेम लीला 90
बंक बिलोचन 92
मुस्कान माधुरी 93
रूप प्रभाव 96
कुंज लीला 97

कालिय दमन 101
चीर हरण 101
प्रेमासक्ति 101
प्रेम बंधन 103
नेत्रोपालंभ 103
प्रेम-वेदन 107
रास लीला 109
फाग-लीला 111
राधा का सौंदर्य 112
मानवती राधा 114
सखी शिक्षा 115
संयोग-वर्णन 117
वियोग-वर्णन 118
सपत्नी-भाव 120
कुबलियापीड़-वध 121
उद्धव-उपदेश 121
ब्रज-प्रेम 122
गंगा महिमा 122
शिव-महिमा 123
प्रेममार्गी शाखा 125
भक्ति की महिमा 129
प्रेम-भक्ति 132
भक्ति के प्रकार 134
ग्यारह आसक्तियाँ 134
पंचधा भक्ति 136
नवधाभक्ति 139
5. छीतस्वामी 145
6. संत रविदास 151
जीवन 151
स्वभाव 152

7. स्वामी हरिदास **161**
जीवन परिचय 161
वृन्दावन प्रस्थान 162
सखी-सम्प्रदाय 162
हरिदास सम्प्रदाय 163
8. रहीम **174**
जीवन परिचय 175
अकबर के दरबार में 175
विवाह 176
मीर अर्ज का पद 177
रहीम शहजादा सलीम 177
भाषा शैली 177
प्रमुख रचनाएं 178

1

मध्यकालीन साहित्य

यूरोप के अंधकारमय मध्यकाल से भिन्न, भारत के मध्यकाल ने असाधारण गुणवत्ता से परिपूर्ण भक्ति साहित्य ने एक अति समृद्ध परम्परा को जन्म दिया जो भारत के इतिहास के एक अंधकारमय युग की अंधविश्वासी धारणाओं का खण्डन करती है।

1000 ई. सन् के आस-पास प्राकृत में स्थानीय भिन्नताएं अधिकाधिक स्पष्ट होती चली गई जिन्हें बाद में अपभ्रंश कहा जाने लगा था और इसके परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं ने आकार लिया तथा इनका जन्म हुआ। इन भाषाओं के क्षेत्रीय, भाषाई तथा जातीय वातावरण द्वारा अनुकूलन के परिणामस्वरूप इन्होंने भाषा संबंधी भिन्न विशेषताएं धारण कर लीं। संविधान में मान्यता प्राप्त आधुनिक भारतीय भाषाएं जैसे–कोंकणी, मराठी, सिंधी, गुजराती (पश्चिमी) मणिपुरी, बांग्ला, ओड़िया और असमी (पूर्वी), तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ (दक्षिणी)य और हिन्दी, उर्दू, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, मैथिली, नेपाली और संस्कृत (उत्तरी) शामिल हैं। संविधान ने दो जनजातीय भाषाओं-बोडो और संथाली को भी मान्यता प्रदान की है। इन 22 भाषाओं में तमिल प्राचीनतम आधुनिक भारतीय भाषा है, जिसने अपनी भाषाई विशेषता को बनाए रखा है और लगभग 2000 वर्षों में इसमें थोड़ा-सा ही परिवर्तन हुआ है। उर्दू आधुनिक भारतीय भाषाओं में सबसे युवा है तथा इसने अपना आकार चौदहवीं शताब्दी ई. सन् में लिया था और अपनी लिपि एक अरबी-फारसी

मौलिकता से ली लेकिन अपनी शब्दावली फारसी और हिन्दी जैसे भारतीय-आर्य स्रोतों से भी ली थी। संस्कृत जो कि प्राचीनतम शास्त्रीय भाषा है, अभी काफी कुछ प्रयोग में है और भारत के संविधान ने इसे इसीलिए आधुनिक भारतीय भाषाओं की सूची में शामिल किया है।

1000 से 1800 ई. सन् के बीच मध्यकालीन भारतीय साहित्य का सर्वाधिक शक्तिशाली रुझान भक्ति काव्य है जिसका देश की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं पर आधिपत्य है। यूरोप के अंधकारमय मध्यकाल से भिन्न, भारत के मध्यकाल ने असाधारण गुणवत्ता से परिपूर्ण भक्ति साहित्य ने एक अति समृद्ध परम्परा को जन्म दिया जो भारत के इतिहास के एक अंधकारमय युग की अंधविश्वासी धारणाओं का खण्डन करती है। भक्ति साहित्य मध्यकालीन युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। भक्ति काव्य में उन्नति के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय भाषाओं ने भी उन्नति की। कबीर कहते हैं कि संस्कृत एक निश्चल कूप के जल के समान है, भाषा बहते पानी की तरह होती है। सातवीं शताब्दी के एक शैव तमिल लेखक माणिक्कवाचकर को कविताओं की अपनी पुस्तक तिरुवाचकम् में ऐसा ही कुछ कहना है।

तमिल में कम्बन, बांग्ला में कृत्तिवास ओझा, ओड़िया में सारला दास, मलयालम में एजूत्तच्चन, हिन्दी में तुलसीदास और तेलुगु में नन्नय भली-भांति जाने जाते हैं। मलिक मोहम्मद जायसी, रसखान, रहीम और अन्य मुस्लिम कवियों ने सूफी तथा वैष्णव काव्य की रचना की। मध्यकालीन साहित्य की एक विशेष विशिष्टता धार्मिक और सांस्कृतिक संश्लेषण प्रचुर मात्रा में पाते हैं। उपनिषदों में हिन्दुत्व के बाद इस्लामी तत्व सबसे अधिक व्यापक है। प्रथम सिख गुरु ने कई भाषाओं में लिखा लेकिन अधिकाशत: पंजाबी में है। वे अन्तर्धर्म संचार के एक महान कवि थे। सिख गुरुओं के काव्य का संग्रह गुरु ग्रंथ साहिब में है जो कि एक बहुभाषीय पाठ है और जो कभी न बदलने वाले एक सच, ब्रह्माण्ड विधि (हुकुम), मनन (सतनाम), अनुकम्पा और सौहार्द (दया और संतोष) के बारे में बताता है। पंजाबी के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि बुल्ले शाह ने पंजाबी कैफी (पद्य-रूप) के माध्यम से सूफीमत को लोकप्रिय बनाया। कैफी बन्दों में एक छोटी-सी कविता है, जिसके बाद टेक आता है और इसे नाटकीय रीति से गाया जाता है, सिंधी के प्रसिद्ध कवि शाह लतीफ (1689 ई. सन्) ने अपनी पावन पुस्तक रिसालो में सूफी रहस्यवादी भक्ति को ईश्वरीय सत्य के रूप में स्पष्ट किया है।

भक्ति में कवयित्रियां

उस अवधि के दौरान अलग-अलग भाषाओं की (महिला) लेखिकाओं के योगदान की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। घोष, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्री, अपाला, रोमाषा, ब्रह्मवादिनी आदि महिला रचनाकारों ने वेदों के समय से ही (6000 ईसा पूर्व से 4000 ईसा पूर्व) संस्कृत साहित्य की मुख्यधारा में महिलाओं की छवि पर ध्यान केन्द्रित किया है। मुट्टा और उब्बीरी जैसी बौद्ध मठवासिनियों (छठी शताब्दी ईसा पूर्व) के गीतों ने और मेत्तिका ने पालि में पीछे छूट गए जीवन के लिए मनोभावों की यातना को अभिव्यक्त किया है। अन्दाल और अन्यों जैसी अलवार कवयित्रियों ने (छठी शताब्दी ई. सन्) ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति को अभिव्यक्ति प्रदान की। (1320-1384 ई. सन् में) कश्मीर की मुस्लिम कवयित्रियों ललद्यद और हब्बा खातून ने भक्ति की सन्त परम्परा का निरूपण किया तथा वख (सूक्तियां) लिखीं जो आत्मिक अनुभव के अद्वितीय रत्न हैं। गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी में मीराबाई (इन्होंने तीन भाषाओं में लिखा), तमिल में अवय्यर और कन्नड़ में अक्कामहादेवी अपनी गीतात्मक गहनता तथा एकाग्र भावात्मक अभ्यर्थना के लिए भली-भांति जाने जाते हैं। इनका लेखन हमें उस समाज की सामाजिक स्थितियों और गृह में तथा समाज में महिलाओं की स्थिति के बारे में बताता है। इन सभी ने भक्ति से ओत-प्रोत, छोटे गीत या कविताएं लिखीं। तात्त्विक गहराई समर्पण तथा उच्चतम सद्भाव की भावना वाले छोटे गीत या कविताएं लिखी। इनके रहस्यवाद और तात्त्विकता के पीछे एक ईश्वरीय उदासी है। इन्होंने जीवन से मिले प्रत्येक घाव को कविता में परिवर्तित कर दिया।

मध्यकालीन साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां

मध्यकालीन साहित्य का पहलू एकमात्र भक्ति ही नहीं था। 'किस्सा' और 'वार' के नाम से प्रसिद्ध पंजाबी की प्रेम गाथाएं वीरोचित काव्य मध्यकाल में पंजाबी के लोकप्रिय रूप थे। पंजाबी की सबसे अधिक प्रसिद्ध प्रेम गाथा हीर रांझा है जो मुस्लिम कवि वारिस शाह की एक अमर पुस्तक है। गांव के भाटों द्वारा मौखिक रूप से गायी गई पंजाबी की एक लोकप्रिय गाथा नादिरशाह का नजबत वार है। वार पंजाबी काव्य, संगीत और नाटक का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप है, इन सभी का एक में समावेश किया गया है और यह प्रारम्भिक युग से ही प्रचलन में है। 1700 और 1800 ई. सन् के बीच, बिहारी लाल और

केशव दास जैसे कई कवियों ने हिन्दी में शृंगार (रचनात्मक भावना) के पंथनिरपेक्ष काव्य का सृजन किया और बड़ी संख्या में अन्य कवियों ने काव्य की सम्पूर्ण शृंखला का विद्वत्तापूर्ण लेखा-जोखा पद्य के रूप में लिखा है।

मध्यकालीन युग में एक भाषा के रूप में उर्दू अपने अस्तित्व में आई। भारत की मिश्रित संस्कृति के एक प्रारम्भिक वास्तुशिल्पकार और सूफी के एक महान कवि अमीर खुसरो (1253 ई. सन्) ने सर्वप्रथम फारसी और हिन्दी (तब इसे हिन्दवी कहते थे) में ऐसी मिश्रित कविता पर प्रयोग किया जो कि एक नई भाषा का आरंभ था जिसकी बाद में उर्दू के रूप में पहचान हुई। उर्दू ने अधिकांशत: काव्य में फारसी रूपों तथा छन्दों का पालन किया लेकिन कुछ शुद्ध भारतीय रूपों को भी अपनाया है–गजल (गीतात्मक दोहे), मरसिया (करुणागीत) और कसीदा (प्रशंसा में सम्बोधि-गीत) इरानी मूल के हैं। सौदा (1706-1781) मध्यकालीन युग के अन्त के कवियों में से थे और इन्होंने उर्दू काव्य को वह ओजस्विता और बहुमुखी प्रतिभा दी जिसे प्राप्त करने के लिए उनके पूर्ववर्ती कवि संघर्ष करते रहे थे। इनके पश्चात दर्द (1720-1785) और मीर तकी मीर (1722-1810) आए जिन्होंने उर्दू को एक परिपक्वता और विशिष्टता प्रदान की और इसे आधुनिक युग में ले आए।

आधुनिक भारतीय साहित्य

(उन्नीसवीं शताब्दी भारतीय पुनरुज्जीवन)

लगभग सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग 1857 में भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रथम संघर्ष या इसके आस-पास से प्रारम्भ होता है। उस समय जो कुछ भी लिखा गया था उसमें पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, राजनैतिक चेतना का उदय और समाज में परिवर्तन को देखा जा सकता है। पश्चिमी दुनिया के सम्पर्क में आने के परिणामस्वरूप जहाँ भारत को एक ओर पश्चिमी सोच को स्वीकारना पड़ा तो वहीं दूसरी ओर इसे अस्वीकार भी करना पड़ा, जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत के प्राचीन वैभव और भारतीय चेतना को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयत्न करना संभव हुआ। बड़ी संख्या के लेखकों ने एक राष्ट्रीय विचारधारा की अपनी तलाश में भारतीयकरण और पश्चिमीकरण के बीच संश्लेषण के विकल्प को चुना। उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में पुनरुज्जीवन को लाने के लिए इन सभी दृष्टिकोणों को मिला दिया गया था।

लेकिन यह पुनरुज्जीवन एक ऐसे देश में लाना था जो विदेशी शासकों के आधिपत्य में था। अतः यह वह पुनरुज्जीवन नहीं था जो चौदहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच यूरोप में फैला था जहां वैज्ञानिक तर्क, वैयक्तिक स्वतंत्रता और मानवीयता प्रबल विशेषताएं थीं।

भारतीय पुनरुज्जीवन ने भारतीय जीवनयात्रा, महत्व और वातावरण के संदर्भ में एक अलग ही आकार ले लिया था जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी, सुधारवादी और पुनरुद्धारवादी सोच ने साहित्य में अपना मार्ग तलाश लिया था और इसने स्वयं को धीरे-धीरे एक अखिल-भारतीय आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया था, देश के अलग-अलग भागों में राजा राममोहन राय (1772-1837), बंकिम चन्द्र चटर्जी, विवेकानन्द, माधव गोविन्द रानाडे, यू वी स्वामीनाथ अय्यर, गोपाल कृष्ण गोखले, के वी पंटुलु, नर्मदा शंकर लालशंकर दवे और कई अन्य नेताओं ने भी इसका नेतृत्व किया। वास्तव में, पुनरुज्जीवन के नेता लोगों के मन में राष्ट्र भक्ति को बैठाने, उनमें सामाजिक सुधार की इच्छा को तथा उनके गौरवमय अतीत के प्रति एक भावनात्मक लालसा को उत्पन्न करने में सफल रहे थे।

सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्यिक गद्य के आविर्भाव और सेरमपुर, बंगाल में एक अंग्रेज विलियम केरी (1761-1834) के संरक्षण में मुद्रणालय का आगमन एक ऐसी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक घटना थी जो साहित्य में क्रान्ति ले आई थी। यह सच है कि संस्कृत और फारसी में गद्य में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है, लेकिन प्रशासन और उच्चतर शिक्षा में प्रयोग करने के लिए आधुनिक भारतीय भाषाओं में गद्य की आवश्यकता के परिणामस्वरूप आधुनिक युग के प्रारम्भ में अलग-अलग भाषाओं में गद्य का आविर्भाव हुआ। 1800 से 1850 के बीच भारतीय भाषाओं में समाचार-पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं का उदय गद्य का विकास करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। सेरमपुर के मिशनरियों ने बंगाल पत्रकारिता एक जीविका के रूप में प्रारम्भ कर दी थी। एक सशक्त माध्यम के रूप में गद्य का आविर्भाव एक प्रकार का परिवर्तन लाया जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ घटित हुआ।

राष्ट्रीयता का आविर्भाव

यह सच है कि भारतीय समाज में एक आधुनिक राष्ट्र की सोच ने भारत के पश्चिमी विचारों के साथ सम्पर्क के कारण अपनी जड़ जमायी थी लेकिन

अतिशीघ्र बंकिम चन्द्र चटर्जी (बांग्ला लेखक 1838–1894) और अन्यों जैसे भारतीय लेखकों ने उपनिवेशी शासन पर आक्रमण करने के लिए राष्ट्रीयता की इस हाल में अपनाई गई संकल्पना का प्रयोग किया और इस प्रक्रिया में राष्ट्रीयता की अपनी एक छाप का सृजन किया जिसकी जड़ें अपने देश की मिट्टी में थी। बंकिम चन्द्र ने दुर्गेश नन्दिनी (1965) और आनन्द मठ (1882) जैसे कई ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की जिन्हें अखिल–भारतीय लोकप्रियता मिली और जिन्होंने राष्ट्रीयता और देश भक्ति को धर्म का एक भाग बना दिया। यह विकल्प सर्वमुक्तिवाद की एक सुस्पष्ट सभ्यतात्मक संकल्प था जिसे कइयों ने पश्चिमी उपनिवेशवाद को एक उत्तर के रूप में स्वीकार कर लिया था। पुनर्जागरणवाद और सुधारवाद राष्ट्रवाद की उभरती हुई एक नई सोच के स्वाभाविक उपसाध्य थे। आधुनिक भारतीय साहित्य का महानतम नाम रवीन्द्र नाथ टैगोर (बांग्ला 1861–1942) ने संघवाद को राष्ट्रीय विचारधारा की अपनी संकल्पना का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाया। इन्होंने कहा कि भारत की एकता विविधता में रही है और सदा रहेगी। भारत में इस परम्परा की नींव नानक, कबीर, चैतन्य और अन्यों जैसे सन्तों ने न केवल राजनीतिक स्तर पर बल्कि सामाजिक स्तर पर रखी थी, यही वह समाधान है–मतभेदों की अभिस्वीकृति के माध्यम से एकता–जिसे भारत विश्व के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसके परिणामस्वरूप, भारत की राष्ट्रीयता महात्मा गाँधी द्वारा प्रचारित सच्चाई तथा सहिष्णुता और पण्डित जवाहर लाल नेहरू द्वारा समर्थित गुटनिरपेक्षता में जा कर मिल जाती है जो भारत के अनेकत्व के प्रति चिन्ता को दर्शाता है। आधुनिक भारतीयता अनेकता, बहुभाषिकता, बहुसांस्कृतिकता, पंथनिरपेक्षता एवं राष्ट्र–राज्य संकल्पना पर आधारित है।

राष्ट्रीयता, पुनर्जागरणवाद और सुधारवाद का साहित्य

विदेशी शासन के विरुद्ध किसी समुदाय के विरोध के रूप में अलग–अलग भाषाओं में स्वत: ही देशभक्ति के लेखों की रचना होने लगी थी। बांग्ला में रंगलाल, उर्दू में मिर्जा गालिब और हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्वयं को उस समय की देशभक्ति से परिपूर्ण स्वर के रूप में अभिव्यक्त किया। यह स्वर एक ओर तो उपनिवेशी शासन के विरुद्ध था तथा दूसरी ओर भारत के गुणगान के लिए था। इसके अतिरिक्त, मिर्जा गालिब (1797–1869) ने प्रेम के बारे में उर्दू में गजलें लिखीं जिनमें सामान्य कल्पना और रूपकालंकार शमिल था। इन्होंने

जीवन को आनन्दमय अस्तित्व और एक अंधकारमय तथा कष्टकर रूप में भी स्वीकार किया। माइकेल मधुसूदन दत्त (1824-73) ने भारतीय भाषा में प्रथम आधुनिक महाकाव्य लिखा था और अतुकांत श्लोकों का देशीकरण किया था। सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) तमिल के एक महान देशभक्त कवि थे जिनके कारण तमिल में कविसुलभ परम्परा में एक क्रान्ति आई। मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दी, 1886-1964), भाई वीर सिंह पंजाबी 1872-1957) और अन्य पौराणिक अथवा इतिहास के विषय लेकर महाकाव्य लिखने के लिए जाने जाते थे तथा इनका स्पष्ट प्रयोजन देशभक्त पाठक की आवश्यकताओं को पूरा करना था। उपन्यास का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार-अभिमुखी आन्दोलन से सहयोजित है। पश्चिम से ली गई इस नई शैली की विशेषता भारतीय दर्शन में इसके अंगीकरण के बाद से ही विद्रोह की एक भावना है। सैमुअल पिल्लै द्वारा प्रथम तमिल उपन्यास प्रताप मुदलियार (1879), कृष्णम्मा चेट्टी द्वारा प्रथम तेलुगु उपन्यास श्रीरंग राजा चरित्र (1872), और चन्दू मेनन द्वारा प्रथम मलयालय उपन्यास इन्दु लेखा (1889) शिक्षाप्रद अभिप्रायों से तथा छुआछूत, जाति भेद, विधवाओं के पुनर्विवाह से इंकार जैसी अनिष्टकर कुप्रथाओं एवं परम्पराओं की पुनः परीक्षा करने के लिए लिखे गए थे। एक अंग्रेज महिला कैथरीन मुल्लेंस द्वारा बांग्ला उपन्यास 'फूलमणि ओ करुणार बिबरन' (1852) अथवा लाला श्रीनिवास दास द्वारा हिन्दी उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (1882) जैसे अन्य प्रथम उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के संबंध में अनुक्रिया तथा उच्चारण की साँझी प्रवृत्ति का पता लगा सकते हैं।

बंकिम चन्द्र चटर्जी (बांग्ला), हरि नारायण आप्टे (मराठी) और अन्यों द्वारा ऐतिहासिक उपन्यास भारत के स्वर्ण काल का वर्णन करने और यहाँ के लोगों के मन में राष्ट्रभक्ति को बैठाने के लिए लिखे गए थे। अतीत की बौद्धिक तथा प्राकृतिक सम्पदा का गुणगान करने के लिए उपन्यास सबसे अधिक उचित माध्यम पाए गए थे और इन्होंने भारतीयों को इनकी बाध्यताओं एवं अधिकारों का स्मरण कराया। वास्तव में, उन्नीसवीं शताब्दी में, साहित्य से राष्ट्रीय अभिज्ञान की सोच का अविर्भाव हुआ था और अधिकांश भारतीय लेखन ज्ञानोदय के स्वर में परिवर्तित हो गया था। इसने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पहुँचने के समय तक भारत के लिए यथार्थ और तथ्यात्मक स्थिति को समझने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। इसी समय के दौरान टैगोर ने उपनिवेशी शासन, उपनिवेशी मानदण्ड और उपनिवेशी प्रधिकार को चुनौती देने

तथा भारतीय राष्ट्रीयता को एक नया अर्थ प्रदान करने के लिए उपन्यास 'गोरा' (1910) लिखना प्रारम्भ किया था।

भारतीय स्वच्छंदतावाद

भारतीय स्वच्छदंतावाद की प्रवृत्ति को उन तीन महान ताकतों ने प्रारम्भ किया था जिन्होंने भारतीय साहित्य की नियति को प्रभावित किया था। ये ताकतें थीं–श्री अरविंद (1872-1950) की मनुष्य में ईश्वर की तलाश, टैगोर की प्रकृति तथा मनुष्य में सौन्दर्य की खोज और महात्मा गाँधी के सत्य एवं अहिंसा के अनुभव। श्री अरविंद ने अपने काव्य और दार्शनिक निबंध 'जीवन ही ईश्वर है' के माध्यम से प्रत्येक वस्तु में ईश्वरत्व के अन्ततः प्रकटन की संभावना को प्रस्तुत किया है। इन्होंने अधिकतर अंग्रेजी में लिखा है। टैगोर की सौन्दर्य के लिए खोज एक आत्मिक खोज थी जिसे इस अन्तिम अनुभूति में सफलता मिली कि मनुष्य की सेवा करना ईश्वर से सम्पर्क साधने का सर्वोत्तम माध्यम है। टैगोर प्रकृति और समूचे विश्व में व्याप्त एक सर्वोपरि सिद्धान्त से परिचित थे। यह सर्वोपरि सिद्धान्त या अज्ञात रहस्यात्मकता सुन्दर है क्योंकि यह ज्ञात के माध्यम से चमकता है और हमें मात्र अज्ञात में ही चिरस्थायी स्वतंत्रता मिलती है। कई आभाओं वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति टैगोर ने उपन्यास, लघु कथाएं, निबंध और नाटक लिखे थे और इन्होंने नए प्रयोग करना कभी भी बन्द नहीं किया। इनकी बांग्ला में कविताओं के संग्रह गीतांजलि को 1913 में नोबल पुरस्कार मिला था। यह पुरस्कार मिलने के पश्चात् टैगोर की कविता ने भारत की अलग-अलग भाषाओं के लेखकों को स्वच्छंदतावादी कविता के युग को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रेरित किया। हिन्दी में स्वच्छंदतावादी कविता के युग को छायावाद, कन्नड़ में इसे नवोदय और ओड़िया में सबुज युग कहते हैं। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी (हिन्दी), वल्लतोल, कुमारन आसन (मलयालम), कालिन्दी चरण पाणिग्रही (ओड़िया), बी एम श्रीकान्तय्या, पुट्टप्पा, बेन्द्रे (कन्नड़), विश्वनाथ सत्यनारायण (तेलुगु), उमाशंकर जोशी (गुजराती) और अन्य भाषाओं के कवियों ने अपनी कविता में रहस्यवादी तथा स्वच्छंदतावादी आत्मपरकता को उजागर किया। रवि किरण मण्डल के कवियों (मराठी के छह कवियों का एक समूह) ने प्रकृति में छिपी वास्तविकता को तलाशा। भारतीय स्वच्छंदवादी रहस्यवाद से भयभीत है-अंग्रेज स्वच्छंदतावाद से भिन्न, जो अनैतिकता के बंधनों को तोड़ना चाहता है, यूनानीवाद में खुशी

तलाश रहा है। वास्तव में, आधुनिक युग की रोमानी प्रकृति भारतीय काव्य की परम्परा का अनुसरण करती है जिसमें रोमानीवाद ने वैदिक प्रतीकात्मकता के आधार पर अधिक और मूर्तिपूजा के आधार पर कम प्रकृति और मनुष्य के बीच वेदान्तिक (एक वास्तविकता का दर्शनशास्त्र) एकत्व के बारे में बताया है। उर्दू के महानतम कवि मोहम्मद इकबाल जिसका स्थान गालिब के बाद है, ने प्रारम्भ में रोमानी-व-राष्ट्रीय चरण के अपने काव्य को अपनाया। इनका उर्दू का सर्वोत्तम संग्रह बंग-ए-दरा (1924) है। अखिल-इस्लामीवाद की इनकी खोज ने मानवता के प्रति इनकी समग्र चिन्ता में बाधा नहीं डाली।

महात्मा गाँधी का आगमन

मोहनदास कर्मचन्द गाँधी (गुजराती, अंग्रेजी और हिन्दी / 1869-1948) और टैगोर ने भारतीय जीवन तथा साहित्य को प्रभावित किया एवं प्रायः ये एक दूसरे के पूरक हुआ करते थे। गाँधीजी ने आम आदमी की भाषा बोली और ये परिपक्व लोगों के साथ थे। सत्यता और अहिंसा इनके हथियार थे। ये परम्परागत मूल्यों के पक्षधर थे और औद्योगिकीकरण के विरोधी थे। इन्होंने अति शीघ्र स्वयं को एक मध्यकालीन सन्त और एक समाज सुधारक के रूप में परिवर्तित कर लिया। टैगोर ने इन्हें महात्मा (सन्त) कहा। गाँधी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के काव्य और कथा साहित्य दोनों के विषय बन गए थे। ये शान्ति और आदर्शवाद के प्रचारक बन गए थे। वल्लतोल (मलयालम), सत्येन्द्रनाथ दत्ता (बांग्ला), काजी नजरुल इस्लाम (बांग्ला) और अकबर इलाहाबादी (उर्दू) ने गाँधी को पश्चिमी सभ्यता को चुनौती के रूप में और एशियाई मूल्यों के गौरव के एक दृढ़कथन के रूप में स्वीकार किया।

गाँधीवादी वीरों ने उस समय के कथासाहित्य से विश्व को अभिभूत कर दिया था। तारा शंकर बंद्योपाध्याय (बांग्ला), प्रेमचन्द (हिन्दी) वी एस खाण्डेकर (मराठी), शरद चन्द्र चटर्जी (बांग्ला), लक्ष्मी नारायण (तेलुगु) ने गाँधी के समर्थकों का नैतिक और धार्मिक प्रतिबद्धताओं से परिपूर्ण ग्रामीण सुधारकों अथवा सामाजिक कामगारों के रूप में सृजन किया। गाँधी मिथक का सृजन लेखकों ने नहीं बल्कि लोगों ने किया था और लेखकों ने अपने काल के दौरान महान उद्‌बोधन के एक युग को चिह्नित करने के लिए इसका प्रभावी रूप से प्रयोग किया। शरद चन्द्र चटर्जी (1876-1938) बांग्ला के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकारों में से एक थे। इनकी लोकप्रियता इनकी पुस्तकों के

विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध असंख्य अनुवादों के माध्यम से न केवल बांग्ला पाठकों के बीच ही नहीं बल्कि भारत के अन्य भागों के लोगों के बीच भी आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। पुरुष–महिला संबंध इनका प्रिय विषय था और ये महिलाओं को, उनकी पीड़ाओं को और उनके प्रायः अनकहे प्यार को चित्रित करने के लिए भली-भांति जाने जाते थे। ये गाँधीवादी और समाजवादी दोनों ही थे।

प्रेमचन्द (1880-1936) ने हिन्दी में उपन्यास लिखे। ये धरती के सच्चे सपूत थे और भारत की धरती से गहरे जुड़े हुए थे। ये भारतीय साहित्य में भारतीय कृषि–वर्ग के सबसे उत्कृष्ट साहित्यिक प्रतिनिधि थे। एक सच्चे गाँधीवादी के रूप में, ये शोषकों के 'हृदय परिवर्तन' के आदर्शवादी सिद्धान्त में विश्वास करते थे लेकिन अपने महा कार्य गोदान (1936) में ये यथार्थवादी बन जाते हैं और भारत के ग्रामीण निर्धन लोगों की पीड़ा तथा संघर्ष को अभिलेखबद्ध करते हैं।

प्रगतिशील साहित्य

भारतीय साहित्यिक दृश्यपरक में तीस के दशक में मार्क्सवाद का आगमन एक ऐसा घटनाचक्र है जिसे भारत कई अन्य देशों के साथ साझा करता है। गाँधी और मार्क्स दोनों ही साम्राज्यवाद के विरोध तथा समाज के वंचित वर्गों के प्रति चिन्ता से प्रेरित हुए थे। प्रगतिशील लेखक संघ की मूल रूप से स्थापना 1936 में मुल्कराज आनन्द (अंग्रेजी) जैसे लन्दन में कुछ प्रवासी लेखकों ने की थी। तथापि, शीघ्र ही यह एक महान अखिल भारतीय आन्दोलन बन गया था जो समाज में गाँधीवाद और मार्क्सवाद की सूक्ष्मदृष्टियों को पास-पास ले आया था। यह आन्दोलन विशेष रूप से उर्दू, पंजाबी, बांग्ला, तेलुगु और मलयालम में स्पष्ट था लेकिन इसका प्रभाव समस्त भारत में महसूस किया गया था। इसने प्रत्येक लेखक को समाज की वास्तविकता के साथ अपने संबंध की पुनः परीक्षा करने के लिए बाध्य कर दिया था। हिन्दी में छायावाद को प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध एक प्रगतिशील शैली ने चुनौती दी थी। नागार्जुन प्रगतिशील समूह के सर्वाधिक सशक्त और प्रसिद्ध हिन्दी कवि थे। बांग्ला कवि समर सेन और सुभाष मुखोपध्याय ने अपनी कविता में एक नए सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण को जगह दी। फकीर मोहन सेनापति (ओड़िया, 1893-1918) सामाजिक यथार्थवाद के पहले भारतीय उपन्यासकार थे। अपनी

धरती से गहरे जुड़े रहना, अभागे व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति और अभिव्यक्ति में ईमानदारी सेनापति के उपन्यासों की विशेषताएं हैं।

माणिक वंद्योपध्याय मार्क्सवाद के सबसे अधिक प्रसिद्ध बांग्ला उपन्यासकार थे। वैक्कम मोहम्मद बशीर, एस के पोट्टेक्काट और तकषि शिवशंकर पिल्लै जैसे मलयाली कथा-साहित्य लेखकों ने उच्च साहित्यिक मूल्य के प्रगतिशील कथा-साहित्य की रचना करके इतिहास रच दिया था। इन्होंने साधारण मनुष्य के जीवन का और उन मानव संबंधों का गवेषण करके अपने लेखन में नए विषयों को शामिल किया जिनको आर्थिक तथा सामाजिक असमानताओं ने प्रोत्साहित किया था। कन्नड़ के सर्वाधिक बहुमुखी कथा साहित्य लेखक शिवराम कारंत कभी भी आपने प्रारम्भिक गाँधीवादी पाठों को नहीं भूले। श्रीश्री (तेलुगु) मार्क्सवादी थे लेकिन इन्होंने अपने जीवन के उत्तरकाल में आधुनिकता में रुचि दर्शायी। अब्दुल मलिक ने असमी में वैचारिक पूर्वाग्रह के साथ लिखा। प्रगतिशील साहित्य के महत्त्वपूर्ण मानदण्ड इस चरण में पंजाबी के अग्रणी लेखक सन्त सिंह शेखों ने स्थापित किए थे। प्रगतिशील लेखकों के आन्दोलन ने जोश मलीहाबादी और फैज अहमद फैज जैसे उर्दू के जाने-माने कवियों का ध्यान आकर्षित किया। मार्क्सवादी भावना से ओत-प्रोत इन दोनों कवियों ने प्रेम की सदियों पुरानी प्रतीकात्मकता को एक राजनैतिक अर्थ प्रदान किया।

आधुनिक रंगशाला का निर्माण

संस्कृत नाटकों ने दसवीं शताब्दी के पश्चात अपनी दिशा खो दी थी। इसने मानव अनुभव के पीछे के सत्य को समझने के लिए प्रतीक और कृत्य के माध्यम से कोई भी प्रयास नहीं किया। मध्यकालीन भारतीय साहित्य गौरवमय था, लेकिन यह भक्ति काव्य का एक युग था जो जीवन के पंथनिरपेक्ष निरूपण को मंच पर प्रस्तुत करने के संबंध में कुछ उदासीन था। मनोरंजन के इन रूपों के संबंध में इस्लामी वर्जना भी भारतीय रंगशाला में गिरावट के प्रति उत्तरदायी थी और इसीलिए नाटक गुमनामी की स्थिति में पहुँच गया था तथापि लोक नाटक दर्शकों का मनोरंजन करते रहे। आधुनिक युग के आगमन और पश्चिमी साहित्य के प्रभाव के परिणामस्वरूप, नाटक ने फिर करवट बदली और साहित्य के एक रूप के रूप में इसका विकास हुआ। 1850 के आस-पास, पारसी रंगशाला ने भारतीय पौराणिक, इतिहास और दंतकथाओं पर आधारित नाटकों का मंचन प्रारम्भ किया गया। इन्होंने

अपने चल दस्तों के साथ देश के अलग-अलग भागों की यात्रा की और अपने दर्शकों पर भारी प्रभाव छोड़ा। आगा हश्र (1880-1931) पारसी रंगशाला के एक महत्त्वपूर्ण नाटकार थे। लेकिन अधिकांश पारसी नाटक वाणिज्यिक और साधारण थे। वास्तव में, आधुनिक भारतीय रंगशाला ने अपने प्रारम्भिक अपरिपक्वता और सतहीपन के विरोध में प्रमुख रूप से प्रतिक्रियास्वरूप विकास किया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र (हिन्दी), गिरीश चन्द्र घोष (बांग्ला), द्विजेन्द्र लाल राय (बांग्ला), दीनबंधु मित्र (बांग्ला, 1829-74), रणछोड़भाई उदयराम (गुजराती, 1837-1923), एम एम पिल्लै (तमिल), बलवन्त पांडुरंग किर्लोसकर (मराठी) (1843-25) और रवीन्द्र नाथ टैगोर ने उपनिवेशवाद, सामाजिक अन्याय और पश्चिमीकरण का विरोध करने के लिए नाटकों का सृजन करने हेतु हमारी लोक परम्परा की खोज की। जयशंकर प्रसाद (हिन्दी) और आद्य रंगाचार्य (कन्नड़) ने ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना की ताकि आदर्शवाद तथा उन अप्रिय वास्तविकताओं के बीच के संघर्ष को उजागर किया जा सके जिससे वे घिरे हुए थे। पी एस मुदलियार ने तमिल मंच को और एक नई दिशा प्रदान की लेकिन कुल मिला कर स्वतंत्रता से पहले के भारतीय साहित्य की स्थिति नाटक की दृष्टि से अच्छी नहीं थी। आधुनिक रंगशाला का निर्माण 1947 में भारत द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् ही पूर्ण हुआ।

आधुनिकता की तलाश

भारत के संदर्भ में कला की एक महान कृति वह है जो परम्परा और वास्तविकता दोनों को अभिव्यक्त प्रदान करती हो। इसके परिणामस्वरूप, भारत के संदर्भ में आधुनिकता की संकल्पना का विकास अलग ही रूप में हुआ। कुछ नए का सृजन करने की आवश्यकता थी, यहां तक कि पश्चिमी आधुनिकतावाद की नकल भी उनकी अपनी वास्तविकताओं को समझाने की एक चुनौती के रूप में सामने आई। इस अवधि के लेखकों ने आधुनिकता के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए अपने घोषणा-पत्र प्रस्तुत किए। एक नई भाषा का पता उनकी अपनी ऐतिहासिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए लगाया गया था। रवीन्द्र नाथ टैगोर के पश्चात् जीवनान्द दास (1899-1954) बांग्ला के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कवि थे जिन्हें काव्य की पूरी समझ थी। ये चित्रणवादी थे और इन्होंने भाषा का प्रयोग मात्र सम्प्रेषण के लिए नहीं

बल्कि वास्तविकता को समझने के लिए भी किया था। बाँग्ला के कथा-साहित्य लेखक विभूति भूषण बंद्योपाहयाय (1899-1950) के नाटक 'पथेर पांचाली' (सड़क का आख्यान) पर सत्यजीत रे ने फिल्म का निर्माण किया जिसे अन्तर्राष्ट्रीय अभिनन्दन मिला। इस फिल्म में गाँव के उस अनगढ़ और स्नेही जीवन को दिखाया गया है जो अब लुप्त होता जा रहा है। इन्होंने मनुष्य के प्रकृति के साथ दैनिक संबंध का अभिनिर्धारण करने की अपनी तलाश में स्वयं को कोई कम आधुनिक सिद्ध नहीं किया। तारा शंकर बंद्योपाध्याय (बांग्ला 1898-1971) अपने उपन्यासों में एक गांव या एक शहर में रहने वाली एक ऐसी पीढ़ी के स्पन्दनगान जीवन को प्रस्तुत करते है जहाँ समाज स्वयं ही नाटक बन जाता है। क्षेत्रीय जीवन, सामाजिक परिवर्तन और मानव व्यवहार को चित्रित करने में उन्हें अपार सफलता मिली। उमाशंकर जोशी (गुजराती) ने एक नया प्रयोगात्मक काव्य प्रारम्भ किया और आज के आधुनिक विश्व के भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व की बात की।

अमृता प्रीतम (पंजाबी) में धरती से अपने संपर्क को गंवाए बिना ही एक आलौकिक वैभव के बारे में एक अति व्यक्तिगत काव्य की रचना की है। बी एस मर्ढेकर (मराठी, 1909-56) में मनुष्य की सीमाओं और इनसे मिलने वाली अवश्यंभावी निराशा के बारे में बताते हुए प्रतिबिम्बों की सहायता से अपने काव्य में समकालीन वास्तविकता को प्रतिनियुक्ति किया है। प्रसिद्ध आधुनिक कन्नड़ कवि गोपाल कृष्ण अडिग (1918-92) ने अपने स्वयं के मुहावरे गढ़े और रहस्यवादी बन गए। ये अपने समय की व्यथा को भी प्रदर्शित करते हैं। व्यावहारिक रूप से सभी कवि मनुष्य की समाज में और इतिहास के बृहतर क्षेत्र में असहाय होने की भावना से उत्पन्न मनुष्य की निराशा को प्रतिबिम्बित करते है, भारतीय आधुनिकता की कुछ विशेषताएं पश्चिम की सीमाएं, मानदण्डों के विकार और मध्यम-वर्ग के मन में निराशा हैं तथापि मानवता की परम्परा भी बहुत कुछ जीवित है और बेहतर भविष्य की आशा से इंकार नहीं किया जा सकता है। पश्चिमी शब्दावली में, आधुनिकतावाद का अर्थ है स्थापित नियमों, परम्पराओं से विचलन लेकिन भारत में यह विद्यमान साहित्यिक प्रतिमानों के विकल्पों की तलाश करना है। इस आधुनिकता के किसी एकल संदर्भ बिन्दु का हम अभिनिर्धारण नहीं कर सकते, इसलिए यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीय आधुनिकता एक पच्चीकारी के समान है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय साहित्यिक परिदृश्य

स्वतंत्रता के पश्चात्, पचास के दशक में समाज के विघटन और भारत की विगत विरासत के साथ एक खण्डित संबंध के दबाव के कारण निराशा अधिक स्पष्ट हो गई थी। 1946 में भारत में स्वतंत्र होने से कुछ समय पूर्व और देश के विभाजन के पश्चात इस उप-महाद्वीप की स्मृति का सबसे बुरा हत्याकाण्ड देखा। उस समय भारत की राष्ट्रीयता शोक की राष्ट्रीयता बन गई थी। उस समय अधिकांश नए लेखकों ने पश्चिमी आधुनिकता के फार्मूलों पर आधारित एक भयानक कृत्रिम विश्व को चित्रित किया है। प्रयोगवादियों ने आन्तरिक वास्तविकता के संबंध में चिन्ता व्यक्त की है–बुद्धिवाद ने आधुनिकता के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया था। भारत जैसी किसी संस्कृति में अतीत यूँ ही नहीं व्यतीत होता। यह वर्तमान के लिए उदाहरण उपलब्ध कराता रहता है लेकिन आधुनिकता संबंधी प्रयोगों के कारण लय खण्डित हो गई थी।

अधिकांश भारतीय कवियों ने विदेशों की ओर देखा और टी.एस. इलियट, मलार्मे, यीट्स या बौदेलेयर को अपने स्रोत के रूप में स्वीकार किया। ऐसा करते समय इन्होंने टैगोर, भारती, कुमारन् आसन, श्री अरविंद और गाँधी को नई दृष्टि से देखा। तब पचास के दशक के इन कवियों और 'अंधकारमय आधुनिकतावाद' के साठ के दशक को भी अपनी पहचान के संकट से गुजरना पड़ा। पहचान का यह विशिष्ट संकट, परम्परागत भारतीयता और पश्चिमी आधुनिकता के बीच विरोध को उस समय के भारत के प्रमुख भाषाई क्षेत्रों के लेखों में देखा जा सकता है। जो पश्चिमी आधुनिकता पर अडिग रहे उन्होंने स्वयं को सामान्य जनसाधारण से और उसकी वास्तविकता से पृथक कर लिया। प्रयोग की संकल्पना कभी-कभी नए मूल्यों की तलाश और मूलभूत संस्कृतियों या मूल्य के स्रोतों की परीक्षा की तलाश करने के रूप में पश्चिमी प्रभाव से स्वतंत्र रूप से विकसित हुई। वात्स्यायन अज्ञेय (हिन्दी), नवकान्त बरुआ (असमी) बी.एस. मर्ढेकर (मराठी), हरभजन सिंह (पंजाबी), शरतचन्द्र मुक्तिबोध (मराठी) और वी के गोकाक (कन्नड़) का एक नए आन्दोलन को समृद्ध बनाते हुए एक विशिष्ट स्वर तथा दृष्टि के साथ आविर्भाव हुआ। इसके अतिरिक्त, सामाजिक यथार्थवाद के साहित्य की जड़ें अपनी मिट्टी में थीं और यह समकालिक साहित्य में एक प्रभावी प्रवृत्ति बन गई। यह तीस के दशक और चालीस के दशक के प्रगतिशील साहित्य का निर्वाहक था लेकिन इसका दृष्टिकोण निश्चित रूप से चरम केंद्रित था। मुक्तिबोध (हिन्दी), विष्णु दे

(बांग्ला) या तेलुगु नग्न (दिगम्बर) कवियों ने जड़ से उखड़ी पहचान के बढ़ते हुए संकट के विरोध में कवियों के एकाकी संघर्ष को उद्घाटित किया। इन्होंने पीड़ा और संघर्ष के विषय पर राजनीतिक काव्य लिखे। यह एक नए तरह का काव्य था। डॉ. राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण व आचार्य नरेंद्र देव की समाजवादी विचारधारा से भारतीय साहित्य में नई दृष्टि आयी। वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य, यू.आर. अनंतमूर्ति ने श्रेष्ठ रचनाएं दी। हिन्दी में 'परिमल' साहित्यिक आंदोलन प्रारंभ हुआ। विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवंश, केशव चंद्र वर्मा, विपिन अग्रवाल, जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि ने साहित्य की धारा बदल दी। साहित्य ने अब पददलितों और शोषितों को अपना लिया था। कन्नड़ विद्रोही एक वर्ण–समाज में हिंसा के रूपों को लेकर चिन्तित थे। धूमिल (हिन्दी) जैसे व्यक्तियों ने सामाजिक यथार्थवाद की एक शृंखला दिखाई। ओ.एन.वी. कुरुप (मलयालम) ने सामाजिक अन्याय के प्रति अपने क्रोध की तेजी को अपनी गीतात्मकता में शामिल किया। इसके पश्चात सत्तर के दशक का नक्सली आन्दोलन आया और इसके साथ की आधुनिकता के बाद की स्थिति ने भारत के साहित्यिक दृश्य में प्रवेश किया। भारत के संदर्भ में, आधुनिकता के बाद की स्थिति मीडिया–प्रचालित और बाजार–नियंत्रित वास्तविकता की प्रतिक्रिया के रूप में आई थी और यह स्थति अपने साथ विरोध एवं संघर्ष भी लेकर आई।

दलित साहित्य

आधुनिकतावाद युग के बाद की स्थिति की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता परित्यक्तों द्वारा रचित साहित्य का एक प्रमुख साहित्यिक ताकत के रूप में आविर्भाव होना है। दलित शब्द का अर्थ है पददलित। सामाजिक दृष्टि से शोषित व्यक्तियों से जुड़ा साहित्य और अल्पविकसित व्यक्तियों की सामाजिक–राजनीतिक स्थिति का समर्थन करने वाला साहित्य इस नाम से जाना जाता है। साहित्य में दलित आन्दोलन डॉ. बी आर अम्बेडकर के नेतृत्व में मराठी, गुजराती और कन्नड़ लेखकों ने प्रारम्भ किया था। यह प्रगतिशील साहित्य के पददलितों के निकट आने के परिणामस्वरूप प्रकाश में आया। यह ब्राह्मणीय मूल्यों का समर्थन करने वाले ऊँची जाति के साहित्य का विरोध करने के लिए लड़ाकू साहित्य है। मराठी कवि नामदेव ढसाल या नारायण सुर्वे अथवा दया पवार या लक्ष्मण गायकवाड़ जैसे उपन्यासकारों ने अपने लेखन में

एक समुदाय की वेदना को दर्शाया है और समाज में पददलितों और परित्यक्तों के लिए एक न्यायसंगत तथा यथार्थवादी भविष्य को आकार देने की माँग की है। महादेव देवनूर (कन्नड़) और जोसफ मैक्वान (गुजराती) ने अपने उपन्यासों में हिंसा, विरोध तथा शोषण के अनुभव के बारे में बताया है। यह विद्यमान साहित्यिक सिद्धांतों, भाव और प्रसंग को चुनौती देता और एक साहित्यिक आन्दोलन की समस्त प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण करता है। यह एक वैकल्पिक सौन्दर्यशास्त्र का सृजन करता है और साहित्य की भाषायी तथा सामान्य संभावनाओं का विस्तार करता है, दलित साहित्य, साहित्य में अनुभव की एक नई दुनिया से परिचय कराता है, अभिव्यक्ति की शृंखला का विस्तार करता है और परित्यक्तों तथा पद-दलित दलितों की भाषाई अंत:शक्ति का उपयोग करता है।

पौराणिकता का प्रयोग

शहरी और ग्रामीण जानकारी के बीच अतीत और वर्तमान के बीच की खाई को पाटने के लिए आधुनिक कविता के बाद के दृश्य में जो एक अन्य प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है वह आधुनिक दशा को प्रस्तुत करने के लिए पौराणिकता का प्रयोग करना है। वास्तव में पौराणिक विचार निरन्तरता और परिवर्तन के बीच की खाई को बाँटने का प्रयास हैं और इस प्रकार से 'समग्र साहित्य' के विचार का प्रामाणीकरण किया जाता हैं। समान पौराणिक स्थितियों का प्रयोग करके आज की उस अवस्थिति को एक व्यापक आयाम प्रदान किया जाता है जिसमें आज का मानव रह रहा है। पौराणिक अतीत मनुष्य के ज्ञानातीत से संबंध की पुष्टि करता है। यह एक मूल्य संरचना है। वह वर्तमान के लिए अतीत की पुन: खोज करता है, और भविष्य के लिए एक अनुकूलन है। अज्ञेय (हिन्दी) के काव्य में हम इस अनुभूति के संबंध में एक बदलाव पाते हैं कि किसी भी व्यक्ति का अस्तित्व एक बृहत् वास्तविकता का एक साधारण-सा भाग मात्र है। सीताकांत महापात्र ने ओडिया साहित्य में नई दृष्टि दी। रमाकान्त रथ (ओडिया) और सीताकान्त महापात्र (ओडिया) पौराणिकता या लोक दन्तकथाओं का प्रयोग परंपरा से आधुनिकता के संबंधों पर विचार करने के लिए करते हैं। हमें लेखकों द्वारा अपनी जड़ों को तलाशने का प्रयास करने, अपने प्राचीन स्थलों का पता लगाने और गत् कई दशकों के दौरान अति आधुनिकतावाद की अवधि में जनस्पष्ट हुए अनुभव के समस्त क्षेत्रों की

छानबीन करने के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। समकालिक भारतीय काव्य में सौम्य होने के एक भाव के साथ-साथ विडम्बना का दृष्टिकोण, रचनात्मक प्रतिमाओं जैसे पौराणिक अनुक्रमों का निरन्तर प्रयोग और औचित्य तथा शाश्वत्त्व की समस्याओं के लगातार उलझने में देखने को मिलते हैं। गिरीश कर्नाड, कंबार (कन्नड़), मोहन राकेश, मणि मधुकर (हिंदी), जीपी सतीश आलेकर (मराठी) मनोज मित्र और बादल सरकार (बांग्ला) जैसे नाटककार भारत के अद्यतन अस्तित्व को समझने के लिए मिथकों, लोक दंतकथाओं, परम्परा का प्रयोग करते रहे हैं।

यूरोप–केन्द्रस्थ आधुनिकतावाद ने विचलन के एक नवीन सामाजिक–सांस्कृतिक पौराणिकी संहिता का सृजन किया है जिसका प्रयोग कुँवर नारायण (हिन्दी), दिलीप चित्रे (मराठी), शंख घोष (बांग्ला) के काव्य और भैरप्पा (कन्नड़), प्रपंचम (तमिल) और अन्यों के उपन्यासों में किया गया है। अब मिथक को साहित्यिक पाठ के अर्थपूर्ण उप-पाठ के रूप में स्वीकार किया जाता है। यू. आर. अनन्त मूर्ति (कन्नड़) अपनी कहानियों में आज के परिवर्तित प्रसंग में कुछ परम्परागत मूल्यों की प्रासंगिकता का पता लगाते रहे हैं। इनका 'संस्कार' नामक उपन्यास एक विश्वस्तरीय शास्त्रीय कृति है जो मनुष्य के जीवन की मागों की अत्यावश्यकता की दृष्टि से मनुष्य के आत्मिक संघर्ष को प्रस्तुत करता है। इन लेखकों ने भविष्य की ओर देखते हुए जड़ों के गौरव को लौटा कर संस्कृति के तत्त्वों को एक रचनात्मक रीति द्वारा दुबारा जानने, पुनः खोजने तथा पुनः परिभाषित करने का एक प्रयास किया है।

समकालीन साहित्य

उत्तर आधुनिक युग में सहज रहने, भारतीय रहने, आम आदमी के निकट रहने, सामाजिक दृष्टि से जागरूक रहने का प्रयास किया जा रहा है। एन. प्रभाकरन, पी. सुरेन्द्रन जैसे मलयालम के तृतीय पीढ़ी के लेखक आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता तक का रेंज रखते हैं। मानव कहानियों को बिना किसी सुस्पष्ट सामाजिक संदेश या दार्शनिक आडम्बर के सुनाने मात्र से ही संतुष्ट हो जाते हैं। विजयदान देथा (राजस्थानी) और सुरेन्द्र प्रकाश (उर्दू) बिना किसी सैद्धांतिक पूर्वाग्रह के कहानियाँ लिखते रहे हैं। अब यह स्थापित हो गया है कि सरल पाठ में भी मूल पाठ विषयक अतिरिक्त संरचना प्रस्तुत की जा सकती

है। यहां तक कि कविता में सरलता से अभिव्यक्त किए जाने वाले सांस्कृतिक संदर्भ भी भिन्न अर्थगत-मूल्य के हो सकते हैं।

अब यह सिद्ध हो गया है कि साधारण पाठ जटिल इतर-पाठ की संरचनाएं प्रस्तुत कर सकता है। यहाँ तक कि काव्य में साधारण रूप से दिए गए सांस्कृतिक संदर्भों के अलग–अलग अर्थगत मूल्य हो सकते हैं। जयमोहन (तमिल) देवेश राय (बांग्ला) और रेणु, शिवप्रसाद सिंह (हिन्दी) द्वारा रचित समकालिक भारतीय उपन्यास, जो कि विभिन्न उपेक्षित क्षेत्रों के बारे में तथा वहाँ बोली जाने वाली उप-भाषा में हैं, समग्र भारत का एक मिश्रित दृश्य प्रस्तुत करते हैं जो नए अनुभवों के साथ स्पंदित हैं और पुराने मूल्यों से जुड़े रहने के लिए संघर्षरत हैं। उत्तर आधुनिकता की इस अवधि में ये उपन्यास अस्तित्व की रीतियों की समस्याओं को नाटक का रूप देते हैं। गाँवों में वास्तविक भारत की झलक देते हैं और यह भी पर्याप्त रूप से स्पष्ट करते हैं कि यह देश हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई का देश है। इसकी संस्कृति एक मिश्रित संस्कृति है। इन आंचलिक उपन्यासकारों ने पश्चिम द्वारा सृजित इस मिथक को नष्ट कर दिया कि भारतीयता मात्र भाग्यवाद है या यह कि भारतीयता की पहचान मैत्री तथा व्यवस्था से करनी होगी और भारतीय दृष्टि अपनी स्वयं की वास्तविकता को समझ नहीं सकती।

बड़ी संख्या में समकालीन उपन्यासकारों ने जो प्रमुख तनाव महसूस किया वह ग्रामीण और परम्परागत रूप से एक शहरी तथा आधुनिकतावाद से बाद की स्थिति तक का परिवर्तन है जिसे या तो पीछे छूट गए गाँव के लिए एक रोमानी विरह के माध्यम से या इसकी समस्त काम-भावना, वीभत्सता, हत्या तथा क्रूरता सहित शहर के भय एवं घृणा के माध्यम से व्यक्त किया गया है। वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य (असमी), सुनील गंगोपाध्याय (बांग्ला), पन्नालाल पटेल (गुजराती), मन्नू भंडारी (हिन्दी) नयनतारा सहगल (अंग्रेजी), वी बेडेकर (मराठी) समरेश बसु (बांग्ला) और अन्यों ने अपनी ग्रामीण-शहरी संवेदनशीलता के साथ भारतीयता के अनुभव को समग्र रूप से प्रस्तुत किया है। कुछ कथा-साहित्य लेखक प्रतीकों, प्रतिमाओं और अन्य काव्यात्मक साधनों की सहायता से जीवन के किसी एक क्षण विशेष को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं। निर्मल वर्मा (हिन्दी), मणि माणिक्यम् (तेलुगु) और कई अन्यों ने इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति का अहसास कराया है। उदारवादी महिलाओं के लेखन का सभी भारतीय भाषाओं में प्रखर अविर्भाव हुआ है जिसने पुरुष-प्रधान सामाजिक

व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया है कमलादास (मलयालम, अंग्रेजी), कृष्णा सोबती (हिन्दी), आशापूर्णा देवी (बांग्ला), राजम कृष्णन (तमिल) और अन्यों जैसी महिला लेखकों ने अलग किस्म के मिथकों तथा प्रति-रूपकालंकार को आगे बढ़ाया।

विजय देव नारायण साही ने हिंदी में आलोचना की एक नई धारा दी। 'लघुमानव' के सौंदर्य को उन्होंने साहित्य का सौंदर्य बनाया तथा अपनी कविताओं के माध्यम से हिंदी में चली आ रही पारंपरिक भाषा व कथ्य को बदल दिया।

भारत में आज का संकट औचित्य और वैश्विकता के बीच के संघर्ष के बारे में है जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लेखक परम्परागत प्रणाली के भीतर रहते हुए समस्या का समाधान करने के लिए एक प्रवृत्ति का अभिनिर्धारण कर रहे हैं जो आधुनिकीकरण की एक ऐसी स्वदेशी प्रक्रिया जनित करने तथा उसे बनाए रखने के लिए पर्याप्त रूप से प्रभावशाली है जिसे बाह्य समाधानों की आवश्यकता नहीं पड़ती और जो स्वदेशी आवश्यकताओं तथा दृष्टिकोणों के अनुसार है लेकिन लेखकों की नई फसल जीवन में अपने आस-पास के सत्य को जिस रूप में देखती है उससे वह चिन्तित है। यहाँ तक कि भारत के अंग्रेजी लेखकों के लिए अंग्रेजी अब कोई उपनिवेशी भाषा नहीं है। अमिताभ घोष, शशि थरूर, विक्रम सेठ, उपमन्यु चौटर्जी, अरुंधती राय और अन्य भारतीयता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के अभाव को दर्शाए बिना इसका प्रयोग कर रहे हैं। वे लेखक जो अपनी विरासत, जटिलता और अद्वितीयता के बारे में सजग हैं, अपने लेखन में परम्परा और वास्तविकता दोनों को व्यक्त करते हैं।

हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कोई भी एकल भारतीय साहित्य स्वयं में पूर्ण नहीं है और इसलिए किसी एकल भाषा के प्रसंग के भीतर इसका कोई भी अध्ययन इसके साथ न्याय नहीं कर सकता है, यहाँ तक कि इसके लेखकों के साथ भी, जो कि सामान्य वातावरण में बड़े होते हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि भारतीय साहित्य कई भाषाओं में लिखा जाता है, लेकिन इनके बीच एक महत्त्वपूर्ण, जीवंत संबंध है। ऐसा बहुभाषी धाराप्रवाहिकता, अन्तर-भाषा–अनुवाद, परस्पर साँझे विषयों, चिन्ताओं, दिशा और आंदोलनों के कारण हुआ है। ये सब मिल कर भारतीय साहित्य के आदर्शों को आज भी सक्रिय रूप से जीवित रखे हुए हैं।

2

सूरदास

सूरदास कवियों में सर्वोपरि हैं। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हिंदी साहित्य, के सूर्य, माने जाते हैं। घ्जीवन परिचय भक्तिकालीन महाकवि सूरदास का जन्म रुनकता नामक ग्राम में 1540 ई. में पंडित रामदास जी के घर हुआ पंडित रामदास सारस्वत ब्राह्मण थे कुछ सीही नामक संस्था को सूरदास का जन्म स्थल मानते हैं। सूरदास जन्म से अंधे थे या नहीं इस सम्बंध में भी विद्वानों में मतभेद है उन्होंने हिंदी भाषा को ऊँचा रखने की कोशिश की।

जीवन परिचय

सूरदास का जन्म 1540(वि. स.) में रुनकता नामक गाँव में हुआ। यह गाँव मथुरा-आगरा मार्ग के किनारे स्थित है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह बहुत विद्वान थे, उनकी लोग आज भी चर्चा करते है। मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे थे। सूरदास के पिता, रामदास गायक थे। सूरदास के जन्मांध होने के विषय में मतभेद है। प्रारंभ में सूरदास आगरा के समीप गऊघाट पर रहते थे। वहीं उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर के कृष्णलीला

के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास की मृत्यु गोवर्धन के निकट पारसौली ग्राम में 1580 ईस्वी में हुई।

सूरदास बनना ?

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। 'साहित्य लहरी' सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है–

मुनि पुनि के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख।।

इसका अर्थ संवत् 1607 ईस्वी में माना गया है, अतएव 'साहित्य लहरी' का रचना काल संवत् 1607 वि0 है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे।

सूरदास का जन्म सं0 1540 ईस्वी के लगभग ठहरता है, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बल्लभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख् कृष्ण एकादशी को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् 1535 वि0 समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका मृत्यु संवत् 1620 से 1648 ईस्वी के मध्य स्वीकार किया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि0 के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 ईस्वी के आस-पास माना जाता है।

श्री गुरु बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदास की आयु 'सूरसारावली' के अनुसार उस समय 67 वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था। मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। 'भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। 'आइने अकबरी' में (संवत् 1653 ईस्वी) तथा 'मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना है।

क्या सूरदास जन्मान्ध थे ?

सूरदास श्रीनाथ की 'संस्कृतवार्ता मणिपाला', श्री हरिराय कृत 'भाव-प्रकाश', श्री गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर, जन्म के अन्धे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों का वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते।

'यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है–'सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि श्रृंगार तथा रंग-रुपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता। ' डॉक्टर (हजारीप्रसाद द्विवेदी), ने लिखा है–'सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए। '

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं–

(1) सूरसागर–सूरदास की प्रसिद्ध रचना है। इसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं।
(2) सूरसारावली
(3) साहित्य-लहरी–जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं।
(4) नल-दमयन्ती
(5) ब्याहलो

उपरोक्त में अन्तिम दो अप्राप्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर की सारावली। श्रीकृष्ण जी की बाल-छवि पर लेखनी अनुपम चली। सूरसागर का मुख्य वर्ण्य विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है। सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक

कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया उन्ही के सार रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।

सहित्यलहरी में सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है।
2. सूर ने वात्सल्य, शृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है–

   मैया कबहिं बढैगी चोटी?

   किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

   सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है। जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।
3. जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।
4. सूर ने भक्ति के साथ शृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

   हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।

   समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।
6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।
7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग

के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है।

8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।
9. सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटें भी मिलते हैं।
10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।
11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है।
12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है।
13. सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

सूरदास का काव्य

महाकवि सूरदास हिन्दी के श्रेष्ठ भक्त कवि थे। उनका संपूर्ण काव्य ब्रजभाषा का शृंगार है, जिसमें विभिन्न राग, रागनियों के माध्यम से एक भक्त हृदय के भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। कृष्ण, गाय, वृंदावन, गोकुल, मथुरा, यमुना, मधुवन, मुरली, गोप, गोपी आदि के साथ-साथ संपूर्ण ब्रज-जीवन, संस्कृति एवं सभ्यता के संदर्भ में उनकी वीणा ने जो कुछ गाया, उसके स्वर और शब्द, शताब्दियां बीत जाने पर भी भारतीय काव्य की संगीत के रूप में व्याप्त हैं। उनके काव्य का अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष अत्यंत सुदृढ़ और प्रौढ़ है तथा अतुलित माधुर्य, अनुपम सौंदर्य और अपरिमित सौष्ठव से भरा पड़ा है।

काव्य पक्ष

काव्य के मुख्य रूप से दो पक्ष होते हैं–

1. भावपक्ष
2. कलापक्ष।

भावपक्ष काव्य का आंतरिक गुण है। इसका संबंध कवि की सहृदयता और भावुकता से होता है। काव्य के शरीर तत्व को कलापक्ष कहते हैं। इसका संबंध कवि की चतुरता और रचना-कौशल से होता है। भावपक्ष एवं कलापक्ष से समन्वित काव्य ही श्रेष्ठ काव्य का उदाहरण माना जाता है।

भावपक्ष

महाकवि सूरदास का 'सूरसागर' वास्तव में रस का महासागर है। इसमें भावों की विविधता और अनेक रूपता के सहज दर्शन होते हैं। मानव हृदय की गहराइयों में डूबने वाले कवि से यही आशा और अपेक्षा भी होती है। अपने सीमित क्षेत्र में भी नवीन उद्‌भावनाओं, कोमल कल्पनाओं आदि के कारण ही सूरदास हिंदी साहित्य के सवश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। सूरदास की कविता के भावपक्ष को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है-

वस्तु-वर्णन

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से सूरदास के संपूर्ण काव्य को प्रमुखतः छः भागों में बाँटकर देखा जा सकता है-(1.) विनय के पद, (2.) बालक कृष्ण से संबंधित पद, (3.) कृष्ण के रूप-सौंदर्य संबंधी पद, (4.) कृष्ण और राधा के रति भाव संबंधी पद, (5.) मुरली संबंधी पद, और (6.) वियोग श्रृंगार के भ्रमरगीत के पद।

विनय के पदों में सूरदास ने विनय की संपूर्ण भूमिकाओं एवं वैष्णव भक्ति संबंधी समस्त नियमों के अनुकूल विनम्रता, निरभिमानता, निष्कपटता, इष्टदेव की महत्ता, भक्त की लघुता आदि का निरूपण बड़ी सजीवता के साथ किया है। कृष्ण के बाल-जीवन संबंधी पदों में सूरदास की अद्‌भुत कला के दर्शन होते हैं। सूरदास ने बाल-जीवन का ऐसा जीता-जागता चित्र अंकित किया है, जिसमें मनोवैज्ञानिकता, सरसता और चित्ताकर्षकता, सभी विद्यमान हैं। कृष्ण के रूप-माधुर्य संबंधी पदों में सूरदास ने अपने इष्टदेव कृष्ण के अनंत सौंदर्य की ऐसी झाँकी प्रस्तुत की है, जिसे देखकर सभी का हृदय अनायास ही उस सौंदर्य पर न्यौछावर हो जाता है। कृष्ण और राधा के रति संबंधी पदों में सूरदास कृष्ण के साथ राधा को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए

उन्हें आराध्य देवी के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। मुरली संबंधी पदों में सूरदास मुरली को एक साधारण मनोमुग्धकारी यंत्र से अधिक व्यापक अर्थ प्रदान करते हैं। और आखिर में वियोग संबंधी भ्रमरगीत के पदों में सूरदास की कला के सर्वोत्कृष्ट रूप का दर्शन होता है। इन पदों में सूरदास ने सरसता, वाग्वैदग्ध्य एवं माधुर्य के साथ-साथ उद्धव संदेश, गोपियों की झुंझुलाहट, प्रेमातिरेक, व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास, उपालंभ, उदारता, सहज चपलता, विरहोंमाद, वचन-वक्रता आदि का अद्‌भुत वर्णन किया है। स्पष्ट है कि सूरदास ने कृष्ण के बाल-जीवन से लेकर किशोरावस्था तक की संपूर्ण क्रीड़ाओं, चेष्टाओं एवं व्यापारों आदि के मनोहारी चित्रण द्वारा' सूरसागर' के रूप में एक अद्‌भुत काव्य की सृष्टि की है, जिसमें वात्सल्य और विप्रलंभ संबंधी वर्णन सर्वोपरि हैं।

प्रकृति-चित्रण

सूरदास की कविता के केंद्र में ब्रज प्रदेश की रमणीय प्रकृति अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है। ब्रज प्रदेश की प्रकृति का मनोहारी रूप और आनंदोल्लासपूर्ण मधुर कलरव सूरदास के प्रत्येक पदों में गुंजायमान है। प्रकृति-नटी के रमणीय झांकी अंकित करते हुए सूरदास उसके ऋतुओं में परिवर्तित होने वाले दिव्य सौंदर्य का मनमोहक निरूपण करते हैं। बसंत ऋतु के एक चित्र में कोकिल सदैव शोर मचाती रहती है, मन्मथ सदा चित्त चुराता रहता है, वृक्षों की डालियां विविध प्रकार के पुष्पों से भरी रहती हैं, जिन पर भ्रमर उन्मुक्त होकर विलास करते रहते हैं, और ऐसे में सर्वत्र हर्ष एवं उल्लास छाया रहता है और कोई भी उदास नहीं होता-

'सदा बसंत रहत जहं बास। सदा हर्ष जहं नहीं उदास॥
कोकिल कीर सदा तंह रोर। सदा रूप मन्मथ चित चोर॥
विविध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमत अपार॥'

कलापक्ष

कलापक्ष काव्य का वाह्य अंग होता है, जिसके अंतर्गत प्रमुखत: काव्य-शैली, भाषा, अलंकार आदि का समावेश होता है। ये तीनों भावों के वाहक हैं, जिनके माध्यम से भावों को संप्रेषित किया जाता है। सूरदास की कविता के कलापक्ष को निम्नांकित रूप में देख सकते हैं-

काव्य-शैली

जीवन की कोमलतम अनुभूतियां गीत-शैली में उत्तम ढंग से व्यक्त हो सकती हैं। इसीलिए सूरदास ने गीत-शैली का आधार ग्रहण किया। कृष्ण का ब्रज रूप समस्त गीति-काव्य की सुंदरतम भावभूमि है। 'सूरसागर' में एक ओर जहाँ कथा की क्षीण धारा प्रवाहित होती है, वहीं दूसरी ओर वर्णात्मक प्रसंग भी हैं, किंतु इनमें कवि का मन ज्यादा रमा नहीं है। प्रत्येक समर्थ साहित्यकार की अपनी विशिष्ट शैली होती है, जिसमें उसका संपूर्ण व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। कुछ विद्वानों ने 'सूरसागर' को प्रबंध-मुक्तक काव्य की संज्ञा से विभूषित किया है।

भाव-चित्रण संबंधी गेय पद

फुटकल गेय पद

सूरदास के पदों में गीतिकाव्य के सभी प्रधान तत्व देखें जाते हैं। सूरदास के पदों की आत्मा संगीत है, जिसकी रचना अनुभूति की सघनता के क्षणों में हुई है। इनमें भाषाओं की वंश वर्तनी है एवं कवि के अंतर्वेग को छंद ने लय की एकरूपता में बाँध दिया है। इनमें अभिप्रेत अर्थ भावों तक पहुँचाने का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सब ही विशेषताएं गीतिकाव्य के अंतर्गत आती हैं। निर्विवादित रूप से 'सूरसागर' गीति-शैली का एक अद्वितीय काव्य-ग्रंथ है।

दृष्टिकूटि-शैली

'सूरसागर' में दृष्टिकूटि-शैली भी देखने को मिलती है। सूरदास की काव्य-कला का एक नमूना वह है, जिसमें शब्द-क्रीड़ा का चमत्कार प्रस्तुत किया गया है। इसमें न तो लोकगीतों की सहजता है और न ही आंतरिक संगीतात्मकता। दृष्टिकूटि पद-रचना हिन्दी में सूरदास की अपनी निजी कलात्मक विशेषता है। उनमें शब्द-क्रीड़ा एवं चमत्कार की सर्वत्र प्रमुखता है।

भाषा-शैली

सूरदास की रचना परिमाण और गुण दोनों में महान् कवियों के बीच अतुलनीय है। आत्माभिव्यंजना के रूप में इतने विशाल काव्य का सर्जन सूर ही कर सकते थे, क्योंकि उनके स्वात्ममुं सम्पूर्ण युग जीवन की आत्मा समाई हुई

थी। उनके स्वानुभूतिमूलक गीतिपदों की शैली के कारण प्रायः यह समझ लिया गया है कि वे अपने चारों ओर के सामाजिक जीवन के प्रति पूर्ण रूप में सजग नहीं थे, परन्तु प्रचारित पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर यदि देखा जाय तो स्वीकार किया जाएगा कि सूर के काव्य में युग जीवन की प्रबुद्ध आत्मा का जैसा स्पन्दन मिलता है, वैसा किसी दूसरे कवि में नहीं मिलेगा। यह अवश्य है कि उन्होंने उपदेश अधिक नहीं दिये, सिद्धान्तों का प्रतिपादन पण्डितों की भाषा में नहीं किया, व्यावहारिक अर्थात् सांसारिक जीवन के आदर्शों का प्रचार करने वाले सुधारक का बना नहीं धारण किया, परन्तु मनुष्य की भावात्मक सत्ता का आदर्शीकृत रूप गढ़ने में उन्होंने जिस व्यवहार बुद्धि का प्रयोग किया है, उससे प्रमाणित होता है कि वे किसी मनीषी से पीछे नहीं थे। उनका प्रभाव सच्चे कान्ता सम्मित उपदेश की भाँति सीधे हृदय पर पड़ता है। वे निरे भक्त नहीं थे, सच्चे कवि थे। ऐसे दृष्टा कवि थे, जो सौन्दर्य के ही माध्यम से सत्य का अन्वेषण कर उसे मूर्त रूप देने में समर्थ होते हैं। युगजीवन का प्रतिबिम्ब होते हुए उसमें लोकोत्तर सत्य के सौन्दर्य का आभास देने की शक्ति महाकवि में ही होती है, निरे भक्त, उपदेशक और समाज सुधारक में नहीं।

सूरदास की रचनाएँ

सूरसागर

सूरसागर, ब्रजभाषा में महाकवि सूरदास द्वारा रचे गए कीर्तनों-पदों का एक सुंदर संकलन है जो शब्दार्थ की दृष्टि से उपयुक्त और आदरणीय है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमर-गीतसार' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

सूरसागर में लगभग एक लाख पद होने की बात कही जाती है। किन्तु वर्तमान संस्करणों में लगभग पाँच हजार पद ही मिलते हैं। विभिन्न स्थानों पर इसकी सौ से भी अधिक प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें प्राचीनतम प्रतिलिपि नाथद्वारा (मेवाड़) के सरस्वती भण्डार में सुरक्षित पायी गई हैं। दार्शनिक विचारों की दृष्टि से 'भागवत' और 'सूरसागर' में पर्याप्त अन्तर है।

काव्य गुणों की इस विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है। वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं जिसका सौन्दर्य पद-पद पर माली के

कृतित्व की याद दिलाता है, बल्कि उस अकृत्रिम वन-भूमि की भाँति है जिसका रचयिता रचना में घुलमिल गया है।

परिचय

पूरा हस्तलिखित रूप में 'सूरसागर' के दो रूप मिलते हैं–'संग्रहात्मक' और संस्कृत भागवत अनुसार 'द्वादश स्कंधात्मक'। संग्रहात्मक 'सूरसागर' के भी दो रूप देखने में आते हैं। पहला, आपके-गौघाट (आगरा) पर श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य होने पर प्रथम प्रथम रचे गए भगवल्लीलात्मक पद–'ब्रज भयौ मैहैर कें पूत, जब यै बात सुनी' से प्रारंभ होता है, दूसरा-'मथुरा-जन्म-लीला' से.।

कहा जाता है, हिंदी साहित्येतिहास ग्रंथों से ओझल 'सूरसागर' के उत्पत्ति विकास का एक अलग इतिहास है, जो अब तक प्रकाश में नहीं आया है और श्री सूर के समकालीन भक्त इतिहास रचयिताओं–'श्री गोकुलनाथ जी, श्रीहरिराय जी (सं.-1647 वि.) और श्री नाभादास जी (सं.-1642 वि.) प्रभृति में जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया है। अतः इन पूर्वा पर के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों से जाना जाता है कि श्री सूर ने सहस्रावधि पद किए, लक्षावधि पद रचे, कोई ग्रंथ नहीं रचा। बाद में अनंत-सूर-पदावली सागर कहलाई। वस्तुतः श्रीसूर, जैसा इन ऊपर लिए संदर्भ ग्रंथों से जाना जाता है, भगवल्लीला के भाव भरे उन्मुक्त गायक थे, सो नित्य नई-नई पद रचना कर, अपने प्रभु 'गोवर्धननाथ जी' के सम्मुख गाया करते थे। रचना करने वाले थे, सो नित्य सवेरे से संध्या तक गाए जाने वाले रागों में ललित रसों का रंग भरकर अपनी वाणी की तूलिका से चित्रित कर अपने को धन्य किया करते थे। अस्तु, न उनमें अपनी उन्मुक्त कृतियों को संग्रह करने का भाव था और न कई क्रम देने की उमंग। उनका कार्य तो अपने प्रभु की नाना गुनन गरूली गुणावली गाना, उसके अमृतोपम रस में निमग्न हो झूमना तथा-'एतेचांश कलापुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयं' (भाग-1/3/28) की नंदालय में बाल से पौगंड अवस्था तक लीलाओं में तदात्मभाव से विभोर होना था, यहाँ अपनी समस्त मुक्तक रचनाओं को एकत्र कर क्रमबद्ध करने का समय और स्थान कहाँ था।

कहा जाता है, श्री सूरदास 'एकदम अंधे थे, ' तब अपनी जब तब की समस्त रचनाओं को कैसे एकत्र करते? फिर भी सूरदास द्वारा नित्य रचे और गाये जाने वाले पदों का लेखन और संकलन अवश्य होता रहा होगा। अन्यथा वे मौलिक रूप से रचित और गाए गए पद लुप्त हो गए होते। संभवतः सूर के

समकालीन शिष्य या मित्र-यदि सूर सचमूच अंधे थे तो-उन पदों को लिखते और संकलित करते रहे होंगे। अब तक उसके संग्रहात्मक या द्वादस स्कंधात्मक बनने का कोई इतिहास पूर्णत: ज्ञात नहीं है। 'गीत-संगीत-सागर' श्री विट्ठलनाथ जी गोस्वामी, (सं. 1572 वि.) के समय श्रीमद्वल्लभाचार्य सेवित कई निधियाँ (मूर्तियाँ), आपके वंशजों द्वारा, ब्रज से बाहर चली गई थीं। यथा: संप्रदाय के अनुसार 'कीर्तनों के बिना सेवा नहीं और सेवा बिना कीर्तन नहीं' अत: जहाँ-जहाँ ये निधियाँ गई, वहीं-वहीं 'कंठ' या 'ग्रंथ' रूप में अष्टछाप के कवियों की कृतियाँ भी गई और वहाँ इनके संकलित रूप में-'नित्य कीर्तन' और 'वर्षोत्सव' नाम पड़े, ऐसा भी कहा जाता है।

सूर के सागर का 'संग्रहात्मक' रूप श्रीसूर के सम्मुख ही संकलित हो चुका था। उसकी सं. 1630 वि. की लिखी प्रति ब्रज में मिलती है। बाद के अनेक लिखित संग्ररूप भी उसके मिलते हैं। मुद्रित रूप इसका कहीं पुराना है। पहले यह मथुरा (सं. 1840 ई.) से, बाद में आगरा (सं.-1867 ई. तीसरी बार), जयपुर (राजस्थान सं. 1865 ई.), दिल्ली (सं. 1860 ई.) और कलकत्ता से सं. 1898 ई. में लीथो प्रेसों से छपकर प्रकाशित हो चुका था। कृष्णानंद व्यासदेव संकलित 'रागकल्पद्रुम' भी इस समय का संग्रहात्मक सूरसागर का एक विकृत रूप है, जो संगीत के रंगों में बँटा हुआ है। ब्रजभाषा के रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि 'द्विजदेव'-अर्थात् महाराज मानसिंह, अयोध्या नरेश (सं. 1907 वि.) ने इसे सं. 1920 वि. में संपादित कर लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित किया था। ये सभी संग्रहात्मक रूप सूरसागर, भगवान श्रीकृष्ण की जन्मलीला गायन रूप गोकुल नंदालय में मनाए गए 'नंदमहोत्सव' से प्रारंभ होकर उनकी समस्त ब्रजलीला मथुरा आगमन, उद्धव-गोपी-संवाद, श्री राम, नरसिंह तथा वामन जयंतियाँ एवं पहले-श्री वल्लभाचार्य जी की शिष्यता से पूर्व रचे गए 'दीनता आश्रय' के पदों के बाद समाप्त हुए हैं। सूर पदों के इस प्रकार संकलन की प्रवृत्ति उनके सागर के संग्रहात्मक रूप पर ही समाप्त नहीं, वह विविध रूपों में आगे बढ़ी, जिससे उनकी पद कृति के नाना संकलित रूप हस्तलिखित तथा मुद्रित देखने में आते हैं, जो इस प्रकार हैं-दीनता आश्रय के पद, दृष्टिकुल पद, जिसे आज 'साहित्यलहरी' कहा जाता है। रामायण, बाललीला के पद, विनय पत्रिका, वैराग्यसतक, सूरछत्तीसी, सूरबहोत्तरी, सूर भ्रमरगीत, सूरसाठी, सूरदास नयन, मुरली माधुरी आदि-आदि,

किंतु ये सभी संग्रह आपके संग्रहात्मक 'सागर कल्पतरु' के ही मधुर फल हैं।

श्री सूर के सागर का रूप श्री व्यास प्रणीत और शुक-मुख-निसृत 'द्वादश स्कंधात्मक' भी बना। वह कब बना, कुछ कहा नहीं जा सकता। हिंदी के साहित्येतिहास ग्रंथ इस विषय में मौन हैं। इस द्वादश स्कंधात्मक 'सूर सागर' की सबसे प्राचीन प्रति सं. 1757 वि. की मिलती है।

इसके बाद की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि सूर समुदित सागर का यह 'श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश स्कंधात्मक रूप' अठारहवीं शती के पहले नहीं बन पाया था। उसका पूर्वकथित 'संग्रहात्मक' रूप इस समय तक काफी प्रसार पा चुका था। साथ ही इस (संग्रहात्मक) रूप की सुंदरता, सरसता और भाषा की शुद्धता एवं मनोहरता में भी कोई विशेष अंतर नहीं हो पाया था। वह सूर के समय जैसी विविध रागमयी थी वैसी ही सुंदर बनी रही, किंतु इसके इस द्वादश स्कंधात्मक रूपों में वह बात समुचित रूप से नहीं रह सकी। ज्यों-ज्यों हस्तलिखित रूपों में वह आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों सूर की मंजुल भाषा से दूर हटती गई। फिर भी जिस किसी व्यक्ति ने अपना अस्तित्व खोकर और 'हरि, हरि, हरि हरि सुमरन करौ' जैसे असुंदर भाषाहीन कथात्मक पदों की रचना कर तथा श्री सूर के श्रीमद्वल्लभाचार्य की चरणशरण में आने से पहले रचे गए 'दीनता आश्रय' के पद विशेषों को भागवत अनुसार प्रथम स्कंध तक ही नहीं, दशम स्कंध उत्तरार्ध, एकादश और द्वादश स्कंधों को सँजोया, वह आदरणीय है।

रूपरेखा

इस द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर की 'रूपरेखा' इस प्रकार है–

प्रथम स्कंध–भक्ति की सरस व्याख्या, भागवत निर्माण का प्रयोजन, शुक उत्पत्ति, व्यास अवतार, संक्षिप्त महाभारत कथा, सूत-शौनक-संवाद, भीष्म प्रतिज्ञा, भीष्म-देह-त्याग, कृष्ण-द्वारिका-गमन, युधिष्ठिर वैराग्य, पांडवों का हिमालयगमन, परीक्षितजन्म, ऋषिशाप, कलियुग को दंड इत्यादि।

द्वितीय स्कंध–सृष्टि उत्पत्ति, विराट् पुरुष का वर्णन, चौबीस अवतारों की कथा, ब्रह्मा उत्पत्ति, भागवत चार श्लोक महिमा। साथ ही इस स्कंध के प्रारंभ में भक्ति और सत्संग की महिमा, भक्ति साधन, अत्मज्ञान, भगवान की विराट् रूप में भारती का भी यत्विंचित् उल्लेख है।

तृतीय स्कंध–उद्धव-विदुर-संवाद, विदुर को मैत्रेय द्वारा बताए गए ज्ञान की प्राप्ति, सप्तर्षि और चार मनुष्यों की उत्पत्ति, देवासुर जन्म, बाराह-अवतार-वर्णन, कर्दम-देवहूति-विवाह, कपिल मुनि अवतार, देवहूति का कपिल मुनि से भक्ति संबंधी प्रश्न, भक्तिमहिमा, देवहूति-हरि-पद-प्राप्ति।

चतुर्थ स्कंध–यज्ञपुरुष अवतार, पार्वती विवाह, ध्रूव कथा, पृथु अवतार, पुरंजन आख्यान।

पंचम स्कंध–ऋषभदेव अवतार, जड़भरत कथा, रहूगण संवाद।

षष्ठ स्कंध–अजामिल उद्धार, बृहस्पति-अवतार-कथन, वृत्रा-सुरवध, इंद्र का सिंहासन से च्युत होना, गुरुमहिमा, गुरुकृपा से इंद्र को पुनः सिंहासन प्राप्ति।

सप्तम स्कंध–नूसिंह-अवतार-वर्णन।

अष्टम स्कंध–गजेंद्रमोक्ष, कूर्मावतार, समुद्र मंथन, विष्णु भगवान का मोहिनी-रूप-धारण, वामन तथा मत्स्य अवतारों का वर्णन।

नवम स्कंध–पुरुरवा-उर्वशी-आख्यान, च्यवन ऋषि कथा, हलधर विवाह, राजा अंबरीय और सौभिर ऋषि का उपाख्यान, गंगा आगमन, परशुराम और श्री राम का अवतार, अहल्योद्धार।

दशम स्कंध (पूर्वार्ध)–भगवान कृष्ण का जन्म, मथुरा से गोकुल पधारना, पूतनावध, शकटासुर तथा तृणावर्त वध, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन, घुटुरुन चलाना, बालवेशशोभा, चंद्रप्रस्ताव, कलेऊ, मृत्तिकाभक्षण, माखनचोर, गोदोहन, वंत्सासुर, बकासुर, अधासुरों के वध, ब्रह्मा द्वारा गो-वत्स-हरण, राधा-प्रथम-मिलन, राधा-नंदघर-आगमन, कृष्ण का राधा के घर जाना, गोचारण, धेनुकवध, कालियदमन, प्रलंबासुरवध, मुरली-चीर-हरण, पनघट रोकना, गोवर्धन पूजा, दानलीला, नेत्र वर्णन, रासलीला, राधा-कृष्ण-विवाह, मान, राधा गुरुमान, हिंडोला-लीला, वृषभासुर, केशी, भौमासुर वध, अकूर आगमन, कृष्ण का मथुरा चला जाना, कुब्जा मिलन, धोबी संहार, शल, तोषल, मुष्टिक और चाणूर का वध, धनुषभंग, कुवलयापीड़ (हाथी) वध, कंसवध, राजा उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाना, वसुदेव देवकी की कारागार से मुक्ति, यज्ञोपवीत, कुब्जाघर गमन, आदि-आदि।

दशम स्कंध (उत्तरार्ध)–जरासंध युद्ध, द्वारका निर्माण, कालियदवन दहन, मुचुकुंद उद्धार, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी विवाह, प्रद्युम्न विवाह, अनिरुद्ध विवाह, राजा मृग नृग उद्धार, बलराम जी का पुनः ब्रजगमन, सांब विवाह,

कृष्ण-हस्तिनापुर-गमन, जरासंध और शिशुपाल का वध, शाल्व का द्वारका पर आक्रमण, शाल्ववध, दतवक्र का वध, बल्वलवध, सुदामाचरित्र, कुरुक्षेत्र आगमन, कृष्ण का श्रीनंद, यशोदा तथा गोपियों से मिलना, वेद और नारद स्तुतियाँ, अर्जुन-सुभद्रा-विवाह, भस्मासुर वध, भृगु परीक्षा, इत्यादि. . .।

एकादश स्कंध–श्रीकृष्ण का उद्धव को वदरिकाश्रम भेजना, नारायण तथा हंसावतार कथन।

द्वादश स्कंध–'बौद्धावतार, कल्कि-अवतार-कथन, राजा परीक्षित तथा जन्मेजय कथा, भगवत् अवतारों का वर्णन आदि। '

इस प्रकार यत्र-तत्र बिखरे इस श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश-स्कंधात्मक रूप में भी, श्री सूर का विशिष्ट वांग्मय 'हरि, हरि, हरि, हरि सुमरैन करौ' जैसे अनेक अनगढ़ काँच मणियों के साथ रगड़ खा-खाकर मटमैला होकर भी कवित्व की प्रभा के साथ कोमलता, कमनीयता, कला, एवं कृष्णस्तुभगवान् स्वयं की सगुणात्मक भक्ति, उसकी भव्यता, विलक्षणता, उनके विलास, व्यंग्य और विदग्धता आदि चमक-चमककर आपके कृतित्व रूप सागर को, नित्य गए रूप में दर्शनीय और वंदनीय बना रहे हैं।

सूरदास की भक्ति भावना

'भक्ति' शब्द की निर्मिति 'भज' धातु में 'क्विन्' प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका अर्थ होता है–'ईश्वर के प्रति सेवा भाव। ' शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र में भी यही बात दुहराई गयी है कि 'सापरानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात 'ईश्वर में पर अनुरक्ति ही भक्ति है। ' नारदभक्तिसूत्र के अनुसार–'भक्ति ईश्वर के प्रति परम-प्रेमरूपा और अमृत स्वरूप है। ' सूरदास के गुरु वल्लभाचार्य ने भी भक्ति के विषय में अपना मत प्रकट किया है कि 'ईश्वर में सुदृढ़ और सनत स्नेह ही भक्ति है। '

सूरदास की भक्ति

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। उनके काव्य में वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित कृष्ण स्वरूप की प्रतिष्ठा स्वाभाविक रूप से हुई है। सूरदास की भक्ति में अंत:करण की प्रेरणा तथा अंतर की अनुभूति की प्रधानता है। उनके काव्य में अभिव्यक्त भक्ति-भावना के दो चरण देखे जा सकते हैं-

पहला चरण वल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व का है, जिसमें सूरदास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व दैन्यभाव पर आधारित भक्ति के पदों की रचना कर रहे थे। दूसरा चरण वल्लभाचार्य से मिलने के बाद आरंभ होता है, जब सूरदास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होकर पुष्टिमार्गीय भक्ति पर आधारित भक्ति के पदों की रचना की ओर प्रवृत हुए। सूरदास की भक्ति भावना में इस प्रकार के पदों का बाहुल्य देखा जा सकता है।

दास्य भाव भक्ति

भक्ति मूलतः भावोद्‌गार है। सूरदास ने अपनी भक्ति में ईश्वर के समक्ष अनेक प्रकार की विनय भावना व्यक्त की है। सूरदास ने स्वयं को अपने ईश्वर का तुच्छ सेवक मानते हुए उनके समक्ष दैन्य प्रकट किया है। इस कारण सूरदास की भक्ति 'दास्य भाव' की भक्ति कहलाती है, जिसमें भक्त स्वयं को अपने ईश्वर का दास मानकर उनकी सेवा और भक्ति करता है। इस संदर्भ में एक कहावत प्रचलित है कि सूरदास जब गाऊघाट पर रहते थे तो उन्हें वहां एक दिन वल्लभाचार्य के आने का पता चला। सूरदास उचित समय पर वल्लभाचार्य से मिलने गए और उनके आदेश पर अपने रचित दो पद उन्हें गाकर भी सुनाए–

'हौं हरि सब पतितन कौ नायक'

एवं

'प्रभु! हौं सब पतितन कौ टीकौ। '

वल्लभाचार्य ने सूरदास के इन दीनतापूर्ण पदों को सुना और उन्होंने सूरदास से कहा कि–

'जो सूर ह्वै कै ऐसो घिघियात काहे को है? कुछ भगवत् लीला वर्णन करौ।'

इस पर सूरदास ने वल्लभाचार्य से कहा कि–'प्रभु! मुझे तो भगवान की लीलाओं का किंचित भी ज्ञान नहीं।' ऐसा सुनकर वल्लभाचार्य ने सूरदास को अपने संप्रदाय में स्वीकारते हुए पुष्टिमार्ग में दीक्षित करने का निश्चय किया। उन्होंने सूरदास को श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कंध की बनाई हुई अपनी अनुक्रमणिका सुनाई, जिसके पश्चात् सूरदास ने विनय के पदों का गान छोड़कर पुष्टिमार्गी परिपाटी के अनुसार ईश्वर की भक्ति का वर्णन करना आरंभ कर दिया। भक्ति भावना के प्रथम चरण में सूरदास 'ईश्वर-भक्ति' को इस संसार में व्याप्त भय एवं ताप से बाहर निकलने का एक मात्र रास्ता मानते हैं। उनका अनुराग ईश्वर के प्रति अप्रतिम है, इसलिए सांसारिकता के प्रति उन्होंने विराग

भाव व्यक्त किया है। सांसारिक सुखों की निंदा करते हुए सूरदास ने सभी सांसारिक कार्यों, सुखों और अवस्थाओं को दोषपूर्ण माना है। उनका मानना था कि निष्पक्ष आँखों से देखने पर ही अपने भीतर की अच्छाईयां और बुराईयां दिखाई पड़ती हैं और खुद के प्रति बरती गयी यही इमानदारी भक्त के हृदय में दैन्य भाव को जगाती है। इसी कारण सूरदास के विनय वर्णित इन आरंभिक पदों में दैन्य भावों की प्रधानता है। ईश्वर के गुणों की अधिकता और उनके समक्ष अपनी लघुता का भाव उन्होंने सूरसागर के आरंभ में बार-बार प्रकट किया हैं। वे कहते हैं कि अगर उन्होंने ईश्वर-भक्ति नहीं की तो उनका इस संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ है-

'सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननी बोझ कत मारी'
'सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान-सियार'

सूरदास का भक्त हृदय इतिहास और पुराण के अनेक उद्धरणों के माध्यम से भक्तों पर ईश्वरी कृपा के महत्त्व का प्रतिपादन करता है। अहिल्या, गणिका, अजामिल, गज, द्रौपदी, प्रहलाप आदि उदाहरणों के माध्यम से सूरदास यह स्थापित करते हैं कि कैसे ईश्वर अपने भक्तों पर कृपा की बौछार बरसाते हैं। सूरदास का भक्त हृदय ऐसा स्मरण कर स्वयं को संतुष्ट करता है-

'गज गनिका गौतम तिय तारी। सूरदास सठ सरन तुम्हारी। '

सूरदास का मानना था कि ईश्वर अपने भक्तों पर असीम कृपा करते हैं। इसलिए उन्होंने ईश्वर को भक्ति वत्सल और हितकारी कहा है-

'ऐसे कान्ह भक्त हितकारी, प्रभु तेरो वचन भरोसौ सांचौ। '

अपनी दुर्दशा के वर्णन द्वारा सूरदास प्रभु शरण में जाने की इच्छा बार-बार व्यक्त करते हैं-

'अबकि राखि लेहु भगवाना'

सूरदास के इस चरण की भक्ति पर संत कवियों की वाणी का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस दौर में माया से संबंधित अनेक पदों की रचना करते हुए उन्होंने माया की भर्त्सना ठीक संत कवियों जैसी ही की है। यद्यपि आगे चलकर उन्होंने निर्गुण भक्ति पर गहरा प्रहार भी किया, लेकिन उनकी भक्ति भावना के निरूपण के इस आरंभिक चरणे में उन पर संत कवियों का प्रभाव पड़ा। कुल मिलाकर 'संसार से विराग और ईश्वर से राग' यही सूरदास की आरंभिक दौर की भक्ति का मूल आधार रहा है, जिसे उन्होंने बड़ी तल्लीनता के साथ व्यक्त किया है।

3

कबीर

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है।

उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।

जीवन

लहरतरब प्रगट्डा स्थल

कबीर के (लगभग 14वीं-15वीं शताब्दी)जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं, जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है।

'काशी में परगट भये, रामानंद चेताये '

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित कथन है कि कबीर को उपयुक्त गुरु की तलाश थी। वह वैष्णव संत आचार्य रामानंद को अपना अपना गुरु

बनाना चाहते थे लेकिन उन्होंने कबीर को शिष्य बनाने से मना कर दिया। कबीर ने अपने मन में ठान लिया कि स्वामी रामानंद को ही हर कीमत पर अपना गुरु बनाऊँगा, इसके लिए कबीर के मन में एक विचार आया कि स्वामी रामानंद जी सुबह चार बजे गंगा स्नान करने जाते हैं उसके पहले ही उनके जाने के मार्ग में सीढ़ियों लेट जाऊँगा और उन्होंने ऐसा ही किया। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियां उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

काशी में परगट भये, रामानंद चेताये
जीविकोपार्जन के लिए कबीर जुलाहे का काम करते थे।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए क्योंकि लोगों की मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है। मगहर में उन्होंने अंतिम साँस ली। आज भी वहाँ पर मजार व समाधि स्थित है।

भाषा

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी हैं। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कृतियां

धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह ' बीजक ' नाम के ग्रंथ में किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं–साखी, सबद (पद), रमैनी

साखी–संस्कृत 'साक्षी', शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद गेय पद है जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

Kabir-stamp - 370x630

धर्म के प्रति

साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे–'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। 'उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति्पूजा, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'।

और कभी 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसै'

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुँच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएं कीं इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुंचे। वहां रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहां के संत भगवान गोस्वामी के जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक

पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान। करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान।'

वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोये हुए गढ्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे ?

सारांश यह कि धर्म की जिज्ञासा सें प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गढ्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंवाद्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

कबीर के राम

कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढाँचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। इसके कुछ विशेष कारण थे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है', लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को

उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खाँचे में बाँधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया-'निर्गुण राम जपहु रे भाई। ' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं। कभी वह राम को माधुर्य भाव से अपना प्रेमी या पति मान लेते हैं तो कभी दास्य भाव से स्वामी। कभी-कभी वह राम को वात्सल्य मूर्ति के रूप में माँ मान लेते हैं और खुद को उनका पुत्र। निर्गुण-निराकार ब्रह्म के साथ भी इस तरह का सरस, सहज, मानवीय प्रेम कबीर की भक्ति की विलक्षणता है। यह दुविधा और समस्या दूसरों को भले हो सकती है कि जिस राम के साथ कबीर इतने अनन्य, मानवीय संबंधपरक प्रेम करते हों, वह भला निर्गुण कैसे हो सकते हैं, पर खुद कबीर के लिए यह समस्या नहीं है।

वह कहते भी हैं

"संतौ, धोखा कासूं कहिये। गुनमैं निरगुन, निरगुनमैं गुन, बाट छाँड़ि क्यूं बहिसे!" नहीं है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने कबीर के राम एवं कबीर की साधना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है–' कबीर का सारा जीवन सत्य की खोज तथा असत्य के खंडन में व्यतीत हुआ। कबीर की साधना ''मानने से नहीं, ''जानने से आरम्भ होती है। वे किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द द्वारा चेताये हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं है, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक हैं। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओं में कैद नहीं है। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्व ही राम हैं। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक नहीं हैं। वे तो प्रेम तत्व के प्रतीक हैं। भाव से ऊपर उठकर महाभाव या प्रेम के आराध्य हैं :-

'प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावै पीउ, पीउ जगावै जीव को, जोइ पीउ सोई जीउ'–जो पीउ है, वही जीव है। इसी कारण उनकी पूरी साधना ''हंस उबारन आए की साधना है। इस हंस का उबारना पोथियों के पढ़ने से नहीं हो सकता, ढाई आखर प्रेम के आचरण से ही हो सकता है। धर्म ओढ़ने की चीज नहीं है, जीवन में आचरण करने की सतत सत्य साधना है। उनकी साधना प्रेम से आरम्भ होती है। इतना गहरा प्रेम करो कि वही तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए। उसको पाने की इतनी उत्कण्ठा हो जाए कि सबसे वैराग्य हो जाए, विरह भाव हो जाए तभी उस ध्यान समाधि में पीउ जाग्रत हो सकता है। वही पीउ तुम्हारे अर्न्तमन में बैठे जीव को जगा सकता है। जोई पीउ है सोई जीउ है। तब तुम पूरे संसार से प्रेम करोगे, तब संसार का प्रत्येक जीव तुम्हारे प्रेम का पात्र बन जाएगा। सारा अहंकार, सारा द्वेष दूर हो जाएगा। फिर महाभाव जगेगा। इसी महाभाव से पूरा संसार पिउ का घर हो जाता है।

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा, सब यहि पसरा ब्रह्म पसारा।
जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।'

कबीर की भक्ति

कबीर के काल में जब आम जनमानस नाना प्रचलित धर्म साधनाओं के फेर में पड असमंजस में था, तब कबीर ने अपनी भक्ति का ऐसा आधार जनता को दिया कि वह निर्गुण निराकार राम के रस में भावविव्हल हो उठी। कबीर हर धर्म की अच्छाईयों से प्रभावित हुए और हर धर्म की बुराइयों पर उन्होंने प्रहार किये और उन्हें जनचेतना के द्वारा दूर करने का प्रयास किया।

कबीर की भक्ति पर वैष्णव विचारधारा का आंशिक प्रभाव पड़ा, कबीर पर सिद्ध और नाथ पंथी योगियों का भी प्रभाव पडा, कबीर पर सूफी मत का भी काफी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यही नहीं कबीर पर वैदिक साहित्य का प्रभाव ही नहीं पड़ा वरन् उन्हें वैदिक साहित्य का अच्छा खासा ज्ञान भी था। उनके लिये तो आचार्य क्षितिमोहन सेन ने यह कहा है कि, '' कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्वग्रासी है। वह कुछ भी नहीं छोड़ना चाहती, इसलिये वह ग्रहणशील है, वर्जनशील नहीं, इसलिये उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है।'

कबीर साहित्य के मर्मज्ञ श्री गोविन्द त्रिगुणायत का लिखते हैं, ' ' वस्तुत: कबीर ने मधुमक्खी के समान अपने समय में विद्यमान समस्त धर्म साधनाओं और निजी के योग से अपनी भक्ति का ऐसा छत्ता तैयार किया है जिसका मधु अमृतोपम है, जिसका पान कर भारतीय जन मानस कृत कृत्य हो उठा है। यह मधु अक्षुण्ण है, युगों से भारतीय इसकी मधुरिमा का रसास्वादन कर रहे हैं। '

कबीर ने अपनी भक्ति में जिस निर्गुण आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैती भावना के प्रभाव से प्रभावित है। कबीर की ब्रह्मभावना अधिकांश अद्वैती है किन्तु कहीं अद्वैत से भिन्न भी है। इसलिये कबीर किसी सिद्धान्त के अनुयायी नहीं न ही प्रस्थापक हैं। उनका ब्रह्म उनके अनुभवों की देन है। कबीर पहले साधक हैं फिर कवि। वे अपनी भक्ति साधना में जिस जिस रूप में अपने ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं उसी रूप में उसे वर्णित करते जाते हैं। वे निज ब्रह्म विचार और आतम साधना में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि कबीर का ब्रह्म कभी किसी रूप में कभी किसी रूप में हमारे सामने आता है। यह तर्क और किसी दार्शनिक सिद्धान्त से बहुत ऊपर है, बस अनुभवों और अनुभूतियों का विषय है।

कबीर कहते हैं;

"कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढे बन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं॥"

वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका प्रभु रोम रोम और सृष्टि के कण कण में बसा है। वह मन में होते हुए भी दूर दिखाई देता है, किन्तु जब प्रियतम पास ही हो तो उसे संदेश भेजने की क्या आवश्यकता? इसलिये कबीर कहते हैं ;

"प्रियतम को पतिया लिखूं, कहीं जो होय बिदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौ कहा संदेस"

वास्तव में प्रिय के साथ इस संदेश व्यवहार को वे दिखावा मात्र मानते हैं, कृत्रिमता मानते हैं। जब ईश्वर रूपी प्रिय की सत्ता हर स्थान पर विद्यमान हो तो इस दिखावे की आवश्यकता क्या है?

"कागद लिखै सो कागदी, कि व्यवहारी जीव।
आतम दृष्टि कहा लिखँ, जित देखे तित पीव॥"

कबीर ने अपने प्रिय की उपस्थिति उसी प्रकार सर्वत्र मानी है जिस प्रकार अद्वैत भावना के पोषक प्रतिबिम्बवाद में। वे भी ईश्वर की सर्वव्यापकता को गहराई से अनुभव किया करते थे।

"ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामहि जानीजै।'

इन दोहों में प्रकाशित उनकी अद्वैत भावना के साथ यह स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है।

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहिं तथ कथ्यौ ज्ञानी॥"
"जाके मुंह माथा नहीं, न ही रूप सुरूप।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्व अनूप॥"

कबीर की निर्गुण भक्ति में साकार ब्रह्म के जो तत्व आ गये हैं, वे कोरे तीव्र भक्ति भावना के द्योतक नहीं हैं, अपितु जन-मन में साकार स्वरूप की जो उपासना प्रचलित थी उसका विरोध करते हुए भी कबीर कहीं न कहीं उसके प्रभाव से बच नहीं सके हैं। वास्तव में लोकप्रचलित परम्परा कहीं न कहीं प्रतिबिम्बित हो ही जाती है। कबीर की भक्ति सरस और विलक्षण है, जिसे आप किसी सीमा में नहीं बाँध सकते। कबीर ने भक्ति को मुक्ति का एकमात्र साधन माना है।

"भक्ति नसैनी मुक्ति की।"
'क्या जप क्या तप क्या संयम क्या व्रत और क्या स्नान
जब लगी जुगत न जानिये, भाव भक्ति भगवान॥'

सर्वस्व समर्पण के साथ साथ अपने अस्तित्व को साध्य में लीन करने की उत्कृष्ट भावना कबीर में परिलक्षित होती है। यही कारण है कि वे ईश्वर के गुलाम बनने में भी नहीं हिचकते।

"मैं गुलाम मोहि बेचि गुँसाई।
तन मन धन मेरा राम जी के तांई॥'

ईश्वर सामीप्य की भावना तो उनसे यह तक कहलवा लेती है ;

"कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवडी जित खैंचे तित जाऊँ॥
विरह भी कबीर की भक्ति का एक अंग है।
"मन परतीति न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग।
क्या जाणौ उस पीव सूं कैसी रहसि संग॥'

कबीर काव्य की यह तड़प अद्‌भुत है। ऐसे अलौकिक प्रिय को जब आत्मा नहीं पाती तो उसके वियोग में विचलित रहती है। जब से गुरु ने उस परमात्मा का ज्ञान करवाया है, भक्त तभी से उसके लिये व्याकुल है।

'गूंगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान।
पाँऊ थें पंगुल भया, सतगुरु मारा बान॥'

कबीर के भक्ति व्याकुल मन ने विरह का जो वर्णन किया है वह इतना मार्मिक तथा स्वाभाविक है कि लगता है कबीर का पौरुषत्व यहाँ समाप्त हो गया है और उनकी आत्मा ने स्त्री रूप में प्रियतम के लिये यह शब्द कहे हैं।

'बिरहनी उभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कह पीव का कबर मिलेंगे आई॥'

जब भक्त का मन विरह से दग्ध हो उठता और प्रिय के वियोग में टूक टूक हुआ जाता है तब वह विवश हो ईश्वर से यह कह बैठता है।

'कै बिरहणी कूं मीच दै, कै आपा दिखलाए।
आठ पहर का दाझणा, मो पै सहा न जाए॥'

वास्तव में यह प्रेम का चरमोत्कर्ष है, जो प्रभु प्रियतम के अभाव में भी आत्मा परमात्मा, भक्त भगवान के अटूट प्रेम की उदूघोषणा कर रहा है।

कबीर की भक्ति में निष्काम भाव है कि यदि उन्हें प्रभु प्राप्त भी हो जाएं तो उनसे वे किसी कामना सिद्धि की बात नहीं सोचते। उनकी एकमात्र कामना है ;

"नैनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारिकै, पिय को लेऊं रिझाय॥"
भक्ति में कामना के घोर विरोधी थे कबीर ;
"जब लगि भगति सकामता तब लगि निष्फल सेव"

इसलिय अन्त समय में भी कबीर ने प्रभु में ध्यान लगाने की बात कही है।

"कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाती।
तेल घटया बाती बुझी, सोवेगा दिन राति॥"

कबीर की भक्ति में पुस्तकीय ज्ञान का कोई महत्व नहीं था। उनका विश्वास था कि ईश्वर में लगायी अटूट लय ही मुक्ति के लिये काफी है। भक्त के लिये तो बस इतना काफी है कि वह विषय वासनाओं से मुक्त हो ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करे।

"पोथि पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥"

"कबीर पढ़िवा दूर कर, पोथी देय बहाय।
बावन आखर सोध कर, रमैं ममैं चित्त लाय॥"

कबीर की भक्ति में कोई भेदभाव नहीं। भक्ति के द्वार सबके लिये खुले हैं। सबकी रचना उन्हीं पंच तत्वों से हुई है और सबका रचयिता वही पिता परमात्मा है।

जाति पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

कबीर के अनुसार भक्ति मार्ग पर तो एकमात्र मार्गदर्शक गुरु ही हैं। गुरु के बिना भक्ति मार्ग कौन प्रशस्त करेगा?

'सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावन हार॥'

उस पर साधु संगति, जिसकी महिमा का भी कोई बखान नहीं। इसे कबीर ने स्वर्ग से अधिक महत्व दिया है।

'राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु संग में, सो बैकुंठ न होय॥'

कबीर की भक्ति अद्‌भुत है, बहुत समर्पित जो कि गंगा के समान पवित्र है, जिसके कई कई पावन घाटों पर जाने कितनी भटकते मन रूपी हिरणों को विश्रान्ति मिलती है।

हर युग का साहित्य अपने समय के समाज से प्रभावित होता है। साहित्य या आध्यात्मिक चेतना के लिए समाज-निरपेक्ष होना संभव नहीं है। कबीर की आध्यात्मिक चेतना अथवा उनकी भक्ति की विशेषता यही है कि यह समाज से जुड़ी हुई है। उनकी भक्ति में सामान्य गृहस्थों के लिए भी स्थान है तथा यह भौतिक जगत की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं करती है। उनकी कविता भी इसी कारण से विशिष्ट है। कबीर की कविता निरीह-शोषित जनता के साथ खड़ी होती है, उनका स्वर बनती है तथा शोषक सामंत वर्ग का जोरदार ढंग से विरोध भी करती है।

कबीर की कविता अथवा उनकी भक्ति या साधना-पद्धति की सामाजिक प्रासंगिकता पर विचार करने के क्रम में इस बात पर भी विचार करना होगा कि कबीर की भक्ति किन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रतिफल है? सामाजिक परिवर्तन में उसकी भूमिका क्या है? तथा समाज के लिए उसकी उपयोगिता क्या है?

कबीर मध्ययुगीन संत कवि है। मध्य-युग हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण काल रहा है। मध्ययुग का पूर्वार्द्ध जहाँ भक्ति आंदोलन का काल रहा है वहीँ इसका उत्तरार्द्ध घोर भौतिकवादी मान्यताओं वालें रीतिग्रंथकारों का भी काल रहा है। भारत में मध्ययुग सामाजिक उत्तल-पुथल का काल रहा है। शोषक सामंत, निर्धनों और निम्नवर्ग का शोषण कर रहें थें। निम्नवर्ग अथवा स्पष्ट कहें तो निचली जातियाँ एक ओर तो तो सामंती उत्पीड़न से बेहाल थीं तथा दूसरी ओर सामाजिक भेद-भाव से त्रस्त थीं। जाति-पाति का भेद-भाव अपने चरम पर था। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा था तथा पाखण्ड और आडम्बर की जड़े तेजी से फैलती जा रहीं थी। कबीर का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था।

कबीर निम्न तबके के जुलाहे थें। उन्होंने सामाजिक भेद-भाव का विष-दंश झेल था। जाति प्रथा पर आधारित जन्मगत श्रेष्ठता का प्रचलन तथा श्रेष्ठ गुणों का तिरस्कार आदि उन्होंने स्वयं देखा था। कबीर को ये भेद-भाव स्वीकार नहीं थें। अत: उन्होंने व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं, कर्मों और गुणों के आधार पर श्रेष्ठ माना है।–

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करों तलवार की पड़ी रहन दो म्यान।।'

कबीर निर्गुण भक्ति और शंकर के अद्वैत को अपनाया। इन दोनों के लिए ही काफी उच्च ज्ञान तथा बौद्धिकता अनिवार्य है। कबीर न तो ब्राह्मण थें और नहीं पर्याप्त रूप से शिक्षित ही थें, फिर उन्होंने ऐसा मत क्यों चुना?

कबीर उच्च कोटि के मानवतावादी संत थें। प्रारम्भ में बड़े सरल और भावुक रहे होंगे। उनकी सरलता उनमें बची रही, बाद में उनकी अक्खड़ता-फक्कड़ता के रूप में स्थान्तरित हो गई, क्योंकि जो सरल होता है वही बेबाक होता है, परन्तु उनकी भावुकता के साथ क्या हुआ?

आचार्य शुक्ल लिखते है की रामानंद जी के प्रभाव के कारण उन्हें हिन्दू रीति-रिवाज आकर्षित करते थें–'वे राम-राम जपा करते और कभी-कभी माथे पर तिलक भी लगा लेते थें। '

यह संभव है कि बाल्यावस्था में सगुण भक्ति की ओर इनकी रुचि रही हो परन्तु यदि ऐसा था तो इन्होंने निर्गुण भक्ति क्यों स्वीकार की? रामानंद जी स्वयं सगुणोपासक थे एवं सगुन रामोपासना का उपदेश देते थे।

गंगा तट वाली घटना में भी उन्होंने कबीर से यही कहा था कि 'राम-राम बोल'। उनके इस राम का आशय सगुन राम से था, फिर कबीर की गुरु भक्ति की भावना भी विख्यात है-

'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, गोविन्द दियो बताय॥'
'यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।'

आखिर क्या कारण था कि रामानंद जी के मन्त्र को भी कबीर ने अपनी मान्यता के अनुसार परिवर्तित करके ही स्वीकाार किया?

यदि यह संभव है की कबीर सगुन भक्ति तथा हिंदू रीति-रिवाजों (भक्ति की पद्धति) के प्रति आकर्षित थे, तब यह भी संभव है कि उनके कार्यों का यथा नाम जप तथा तिलक लेपन आदि का विरोध हुआ हो। हिंदू-मुस्लिम दोनों ने इसका विरोध किया होगा। बालक कबीर पर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा? हिन्दू-मुस्लिम, ऊँच-नीच का भेद-भाव, छूआ-छूत इन सबने कबीर को अंदर से झकझोर दिया। कबीर की भावुकता दब गई तथा उनके स्थान पर भेद-भाव के विरोध के लिए आवश्यक जुझारूपन उनके अंदर विकसित हुआ।

सगुण भक्ति को स्वीकार न करने के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह की सगुण भक्ति चाहे-अनचाहे ब्राह्मणवादी पौराणिकता, सामंती रुढ़िओं और भेद-भाव का पोषण करती है। मानव-मानव में समानता की जो भावना कबीर चाहतें थे, वह सगुण भक्ति में संभव नहीं थी। दूसरा कारण मेरे अनुसार कहीं न कहीं यह भी हो सकता है कि इस्लामिक संस्कारों और मान्यताओं के अनुसार सगुण भक्ति इनके अनुकूल न थी।

कबीर मानव मात्र से प्रेम से प्रेम करते थे। इनके लिए सब सामान है, कोई भेद नहीं है। न कोई राजा है, न कोई रंक है, न कोई पंडित है, न कोई मुर्ख, न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र सभी उसी परमब्रह्म के अंश हैं, सभी ब्रह्म हैं।

शंकर के अद्वैत को स्वीकार करने के पीछे इनका यह मानव मात्र के प्रति प्रेम तथा उनकी समदृष्टि ही कारण था। इस प्रकार इनकी भक्ति साधना और इनके दार्शनिक विचार सब समाज के द्वारा ही उत्प्रेरित थें।

कबीर एक भक्त के साथ ही समाज सुधारक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। समाज सुधार के उनके कार्य या उनकी कविता की सामाजिकता का अध्ययन हम निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत करेंगे।

एकता और समन्वय का प्रयास, जाति-पाति का विरोध-

कबीर का समाज ऊँच-नीच, सवर्ण-कुवर्ण, ब्राह्मण-शूद्र, शोषक-शोषित, हिन्दू-मुसलमान इत्यादि में बँटा था ही समाज का ईश्वर भी बँटा हुआ थ। हिन्दू-मुसलमान में वैमनस्य बढ़ रहा था।-

'संतौ देखहु जग बौराना हिन्दू कहे मोहि राम पियारा तुरक कहे रहिमाना।'

तत्कालीन समाज में ईष्या और द्वेष से भरा वातावरण था, परन्तु कबीर को हिंदू और मुसलमान दोनों ही प्यारे थे। ये तो मानव मात्र से प्रेम करते थे, इनके लिए सब बराबर थें। अतः ये एक ऐसा पंथ बनना चाहते थे, ऐसी साधना पद्धति विकसित चाहते थे जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वीकार कर सकें। इसीलिए इन्होंने निर्गुण भक्ति का आश्रय लिया तथा राम और रहीम को एक बताकर उस एक सच्चे ईश्वर की आराधना का उपदेश दिया जो सबसे ऊपर है जो परमतत्व है, परमात्मा है। सामाजिक भेद-भाव का स्वाद इन्होंने चखा था। समाज को तोड़ने वाली इन विभेदकारी रूढ़ियों को ये कभी प्रोत्साहित नहीं कर सकते थे। इन्होंने मानव मात्र की एकता पर बल दिया-

'एक बून्द एकै मल-मूतर, एक चाम एक गुदा। एक जोति से सब उत्पन्ना, को ब्राह्मन को सूदा।।'

इन्होंने बताया कि सब उसी राम के अंश हैं, अन्य सभी भेद माया जनित भ्रम हैं तथा जिन लोगों ने अपने आपको श्रेष्ट घोषित करने का प्रयास किया उन्हें इन्होंने डाँट भी लगाई-

'ऊंचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय। सुबरन कलश सूरा भरा, साधू निंदै सोय।'

'जो तू बाभन बभनी जाया, आन राह तै क्यों नहीं आया।
जो तू तुरक तुरकनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया।।'

इस प्रकार कबीर ने जनता और जनता के ईश्वर को एक कर सामाजिक एकता को बल प्रदान किया।

माध्यम मार्ग का अनुसरण

कबीर की भक्ति माध्यम मार्गी थी। कबीर न तो शरीर का दमन कर घोर तप करने को कहते हैं और न ही विषय-वासना आदि में रत रहने को कहते हैं। ये जानते थे की 'यदि शरीर को अधिक कष्ट देकर भगवान का भजन

किया गया तो वह अधिक दिनों तक बचेगा नहीं और यदि विषयासक्त होकर भजन किया जाएगा तो मन भजन की और उन्मुख नहीं होगा। ' घोर तप साधारण जनता के लिए संभव भी नहीं था। इसीलिए कबीर ने माध्यम मार्ग का उपदेश दिया। ये स्वयं उच्च कोटि के साधक होकर भी अपना पैतृक कर्म करते रहें। इस तरह इन्होंने न तो धन-संग्रह में ही जी-जान से लग जाने का उपदेश दिया है न ही यही कहा है की घर-बार छोड़ कर निकम्मे फकीर बन जाओ। इनके अनुसार धन का उतना ही संग्रह करना चाहिए जिससे परिवार का पालन-पोषण भी हो जाए तथा घर आया अतिथि भी भूखा न जाए।–

'साई इतना दीजिये जा में कुटुंब समाय। .....

'आचरण की शुद्धता–कबीर के भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह आचरण की शुद्धता पर बल देता है। कबीर ने सामान्य जनता को सही मार्ग दिखाया। इन्होंने उन्हें बताया कि भक्ति के लिए आचरण की शुद्धता अनिवार्य है। इन्होंने उन्हें सत्य, अहिंसा तथा कर्म का महत्त्व बताया।

'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। '

आचरण की शुद्धता के लिए कबीर ने सद्पुरुषों की संगति को श्रेष्ठतम उपाय बताया है।–

'कबीर संगति साधु की, बेगि करीजै जाइ। '

बाह्य आडम्बरों का विरोध-

कबीर एक सीधें और सच्चे साधक थे। सार-सार को ग्रहण कर थोथा उड़ा देना उनका आदर्श था। साधना में बाह्याडम्बरों का इन्होंने जम कर विरोध किया। बाह्याडम्बरों के विरोध में रचित इनके दोहे काफी व्यंगपूर्ण और प्रभावी हैं।

वे निर्गुण भक्त थे अतः मूर्तिपूजा में उन्हें कोई लाभ दिखता न था। निराकार परमात्मा के स्थान पर पत्थर की मूर्ती उन्हें जँचती न थी।

संक्षिप्त निष्कर्ष–संत कबीर के विचार दीर्घकालीन भारतीय चिंतन शृंखला की कड़ी के रूप में सामने आते हैं। कबीर के विचार उपनिषदों, भगवान बुद्ध की मान्यताओं, शंकर के विचारों और मध्कालीन सिद्धों की शिक्षाओं के सार हैं। कबीर की साधना पद्धति, उनकी भक्ति और उनके सामाज सुधार के विचार उस समय भी महत्वपूर्ण थें तथा आज भी महत्वपूर्ण हैं। आज भी तमाम ऐसे उपकरण हैं, ऐसे व्यर्थ के कार्य हैं जिनका मानव के जीवन में कोई महत्व नहीं है, परन्तु मानव है कि अपने जरूरी कार्यों को छोड़ कर उन व्यर्थ के

कामों में लगा रहता है। ये कार्य, ये उपकरण और कुछ नहीं माया ही हैं। हमें इनके बीच ठीक वैसे ही रहना होगा जैसे कबीर घर-गृहस्थी में होने के बाद भी विरक्त हो कर जीते थे। 'उपयोग उतना ही होना चाहिए जितना अनिवार्य हो अधिक की लालसा व्यर्थ है', आज के भौतिकवादी विश्व में कबीर के ये विचार और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। समदृष्टि की जो बात कबीर ने कही थी, उन्होंने जो मानव-मानव के बीच अभेद्य की बात कही थी वह आज के समय में प्रासंगिक है।

कबीर का साहित्यिक परिचय

कबीर साहब निरक्षर थे। उन्होंने अपने निरक्षर होने के संबंध में स्वयं 'कबीर–बीजक' की एक साखी में बताया है। जिसमें कहा गया है कि न तो मैं ने लेखनी हाथ में लिया, न कभी कागज और स्याही का ही स्पर्श किया। चारों युगों की बातें उन्होंने केवल अपने मुँह द्वारा जता दिया है –

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात॥

संत मत के समस्त कवियों में, कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक माने जाते हैं। उन्होंने कविताएँ प्रतिज्ञा करके नहीं लिखी और न उन्हें पिंगल और अलंकारों का ज्ञान था। लेकिन उन्होंने कविताएँ इतनी प्रबलता एवं उत्कृष्टता से कही है कि वे सरलता से महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है। ये संदेश आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा, पथ–प्रदर्शण तथा संवेदना की भावना सन्निहित है। अलंकारों से सुसज्जित न होते हुए भी आपके संदेश काव्यमय हैं। तात्विक विचारों को इन पद्यों के सहारे सरलतापूर्वक प्रकट कर देना

ही आपका एक मात्र लक्ष्य था –

तुम्ह जिन जानों गीत हे यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समझाता, आतम साधन सार रे॥

कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करनेवाले तथा मर्यादा के रक्षक कवि थे। आप अपनी काव्य कृतियों के द्वारा पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।

हरि जी रहे विचारिया साखी कहो कबीर।
यौ सागर में जीव हैं जे कोई पकड़ै तीर॥

कवि के रुप में कबीर जीव के अत्यंत निकट हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सहजता को प्रमुख स्थान दिया है। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। उनके काव्य का आधार यथार्थ है। उन्होंने स्वयं स्पष्ट रुप से कहा है कि मैं आँख का देखा हुआ कहता हूँ और तू कागज की लेखी कहता है –

मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज–सुधारक एवं प्रगतिशील दार्शनिक तथा आवश्यकतानुसार कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य रचनाएँ इस प्रकार कही है कि उसमें आपके व्यक्तित्व का पूरा–पूरा प्रतिबिंब विद्यमान है।

कबीर की प्रतिपाद्य शैली को मुख्य रुप से दो भागों में बाँटा गया है – इनमें प्रथम रचनात्मक, द्वितीय आलोचनात्मक। रचनात्मक विषयों के अंतर्गत सतगुरु, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष आदि पर व्यावहारिक शैली में भाव व्यक्त किया गया है। दूसरे पक्ष में वे आलोचक, सुधारक, पथ–प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रुप में दृष्टिगत होते हैं। इस पक्ष में उन्होंने चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, कनक, कामिनी आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं।

काव्यरुप एवं संक्षिप्त परिचय –

कबीर की रचनाओं के बारें में कहा जाता है कि संसार के वृक्षों में जितने पत्ते हैं तथा गंगा में जितने बालू–कण हैं, उतनी ही संख्या उनकी रचनाओं की है –

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।
पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख वैन॥

विभिन्न समीक्षकों तथा विचारकों ने कबीर के विभिन्न संग्रहों का अध्ययन करके निम्नलिखित काव्यरुप पाये हैं –

- साखी
- पद
- रमेनी
- चौंतीसा
- वावनी

- विप्रमतीसी
- वार
- थिंती
- चाँवर
- बसंत
- हिंडोला
- बेलि
- कहरा
- विरहुली
- उलटवाँसी

साखी

साखी रचना की परंपरा का प्रारंभ गुरु गोरखनाथ तथा नामदेव जी के समय से प्राप्त होता है। साखी काव्यरुप के अंतर्गत प्राप्त होने वाली, सबसे प्रथम रचना गोरखनाथ की जोगेश्वरी साखी है। कबीर की अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली है। प्रतिपाद्य के एक–एक अंग को लेकर इस निरक्षर कवि ने सैकड़ों साखियों की रचना की है। प्रत्येक साखी में अभिनवता बड़ी कुशलता से प्रकट किया गया है। उन्होंने इसका प्रयोग नीति, व्यवहार, एकता, समता, ज्ञान और वैराग्य आदि की बातों को बताने के लिए किया है। अपनी साखियों में कबीर ने दोहा छंद का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

कबीर की साखियों पर गोरखनाथ और नामदेव जी की साखी का प्रभाव दिखाई देता है। गोरखनाथ की तरह से कबीर ने भी अपनी साखियों में दोहा जैसे छोटे छंदों में अपने उपदेश दिये।

संत कबीर की रचनाओं में साखियाँ सर्वाधिक पायी जाती है। कबीर बीजक में 353 साखियाँ, कबीर ग्रंथ वाली में 919 साखियाँ हैं। आदिग्रंथ में साखियों की संख्या 243 है, जिन्हें श्लोक कहा गया है।

प्राचीन धर्म प्रर्वतकों के द्वारा, साखी शब्द का प्रयोग किया गया। ये लोग जब अपने गुरुजनों की बात को अपने शिष्यों अथवा साधारणजनों को कहते, तो उसकी पवित्रता को बताने के लिए साखी शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे साखी देकर, यह सिद्ध करना चाहते थे कि इस प्रकार की दशा का अनुभव अमुक–अमुक पूर्ववर्ती गुरुजन भी कर चुके हैं। अतः प्राचीन धर्म प्रवर्तकों द्वारा

प्रतिपादित ज्ञान को शिष्यों के समक्ष, साक्षी रुप में उपस्थित करते समय जिस काव्यरुप का जन्म हुआ, वह साखी कहलाया।

संत कबीर की साखियाँ, निर्गुण साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न भावोन्मत्तता, उन्माद, ज्ञान और आनंद की लहरों से सराबोर है। उनकी साखियाँ ब्रह्म विद्या बोधिनी, उपनिषदों का जनसंस्करण और लोकानुभव की पिटारी है। इनमें संसार की असारता, माया मोह की मृग–तृष्णा, कामक्रोध की क्रूरता को भली–भांति दिखाया गया है। ये सांसारिक क्लेश, दुख और आपदाओं से मुक्त कराने वाली जानकारियों का भण्डार है। संत कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन उनकी साखियाँ हैं।

साखी आँखी ग्यान को समुझि देखु मन माँहि
बिन साखी संसार का झगरा छुटत नाँहि।।

विषय की दृष्टि से कबीर साहब की सांखियों को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. लौकिक भाव प्रधान
2. परलौकिक भाव प्रधान

लौकिक भाव प्रधान साखियाँ भी तीन प्रकार की है –

1. संतमत स्वरुप बताने वाली
2. पाखण्डों का विरोध करने वाली
3. व्यवहार प्रधान

संतमत का स्वरुप बताने वाली साखियाँ –

कबीर साहब ने अपनी कुछ साखियों में संत और संतमत के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं –

निर बेरी निहकामता साई सेती नेह।
विषिया सूँन्यारा रहे संतरि को अंग एह।।

कबीर साहब की दृष्टि में संत का लक्ष्य धन संग्रह नहीं है –

सौंपापन कौ मूल है एक रुपैया रोक।
साधू है संग्रह करै, हारै हरि सा थोक।
संत व बांधै गाँठरी पेट समाता लेई।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगै तब दई।

संत अगर निर्धन भी हो, तो उसे मन छोटा करने की आवश्यकता नहीं है –

सठगंठी कोपीन है साधू न मानें संक।
राम अमल माता रहे गिठों इंद्र को रंक।

कबीर साहब परंपरागत रुढियों, अंधविश्वासों, मिथ्याप्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति–रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हिंदू–मुसलमान दोनों में ही फैली हुई कुरीतियों का विरोध अपनी अनेक साखियों में किया है।

व्यवहार प्रधान साखियाँ

कबीर साहब की व्यवहार प्रधान साखियाँ, नीति और उपदेश प्रधान है। इसमें संसभू के प्रत्येक क्षेत्र में उचित व्यवहार की रीति बताई गई हैं। इन साखियों में मानव मात्र के कल्याणकारी अनुभव का अमृत छिपा हुआ है। पर निंदा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, मोह, मदमत्सर, कपट आदि का निषेध करके, वे सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष, क्षमा, समदर्शिता, परोपकार तथा मीठे वाचन आदि के लिए आग्रह किया गया है। वे त्याज्य कुकर्मों को गिना कर बताते है –

गुआ, चोरी, मुखबरी, व्याज, घूस, परमान।
जो चाहे दीदार को एती वस्तु निवार॥

विपत्ति में धैर्य धारण करने के लिए कहते है –

देह धरे का दंड है सब काहू पै होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञानकरि मूरख भुगतै रोय॥

वह बानी संयम पर बल देते हुए कहते हैं –

ऐसी बानि बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय।

पारलौकिक भाव प्रधान साखियाँ

संत कबीर साहब इस प्रकार की अपनी साखियों में नैतिक, अध्यात्मिक, सांसारिक, परलौकिक इत्यादि विषयों का वर्णन किया है।

कुछ साखियाँ –

राम नाम जिन चीन्हिया, झीना पं तासु।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जायें मासु।

बिन देखे वह देसकी, बात कहे सो कूर।
आपुहि खारी खात है, बैचत फिरे कपूर।

पद (शब्द)

संत कबीर ने अपने अनुभवों, नीतियों एवं उपदेशों का वर्णन, पदों में भी किया है। पद या शब्द भी एक काव्य रुप है, जिसको प्रमुख दो भागों में बाँटा गया है –

1. लौकिक भाव प्रधान
2. परलौकिक भाव प्रधान

लौकिक भाव प्रधान पदों में सांसारिक भावों एवं विचारों का वर्णन किया गया है। इनको भी दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. धार्मिक पाखण्डों का खंडन करने वाले पद।
2. उपदेशात्मक और नीतिपरक पद।

संत कबीर जातिवाद, ऊँच–नीच की भावना एवं दिखावटी धार्मिक क्रिया–कलापों के घोर विरोधी थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों की प्रचलित मान्यताओं तथा उपासना पद्धतियों की अलग–अलग आलोचना की है। वे वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान और रहस्य को जानने पर बल देते हैं –

वेद कितेब कहौ झूठा।
झूठा जो न विचारै।।
झंखत बकत रहहु निसु बासर, मति एकौ नहिं जानी।
सकति अनुमान सुनति किरतु हो, मैं न बदौगा भाई।।
जो खुदाई तेरि सुनति सुनति करतु है, आपुहि कटि कयों न आई।
सुनति कराय तुरुक जो होना, औरति को का कहिये।।

रमैनी

रमैनी भी संत कबीर द्वारा गाया गया काव्यरुप है। इसमें चौपाई दो छंदों का प्रयोग किया गया है। रमैनी कबीर साहब की सैद्धांतिक रचनाएँ हैं। इसमें परमतत्व, रामभक्ति, जगत और ब्रह्म इत्यादि के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

जस तू तस तोहि कोई न जान। लोक कहै सब आनाहि आना।
वो है तैसा वोही जाने। ओही आहि आहि नहिं आने।।

संत कबीर राम को सभी अवतारों से परे मानते हैं–

ना दसरथ धरि औतरि आवा।
ना लंका का राव सतावा।।
अंतर जोति सबद एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।।
ते तिरिये भग लिंग अनंता। तेउ न जाने आदि औ अंतर।।
एक रमैनी में वे मुसलमानों से प्रश्न पूछते हैं।
दर की बात कहाँ दरबेसा। बादशाह है कवने भेष।
कहां कंच कहँ करै मुकाया। मैं तोहि पूँछा मुसलमाना।।
लाल गरेद की नाना बना। कवर सुरहि को करहु सलाया।।
काजी काज करहु तुम कैसा। घर–घर जबह करवाहु भैसा।।

चौंतीसा

चौंतीसा नामक काव्यरुप केवल 'कबीर बीजक' में ही प्रयोग किया गया है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों को छोड़कर, केवल व्यंजनों के आधार पर रचनाएँ की गई हैं –

पापा पाप करै सम कोई। पाप के करे धरम नहिं होई।
पापा करै सुनहु रे भाई। हमरे से इन किछवो न पाई।
जो तन त्रिभुवन माहिं छिपावै। तत्तहि मिले तत्त सो पावै।
थाथा थाह थाहि नहिं जाई। इथिर ऊथिर नाहिं रहाई।

बावनी

बावनी वह काव्यरुप है, जिसकी द्विपदियों का प्रारंभ नागरी लिपि के बावन वर्णों में से प्रत्येक के साथ क्रमशः होता है। बावनी को इसके संगीतनुसार गाया जाने का रिवाज पाया जाता है। विषय की दृष्टि से यह रचनाएँ अध्यात्मिकता से परिपूर्ण ज्ञात होता है।

ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै। घर महँ जग्य प्रतिग्रह आनै
जे सिरजा तेहि नहिं पहचानैं। करम भरम ले बैठि बखानै।
ग्रहन अमावस अवर दुईजा।
सांती पांति प्रयोजन पुजा।।

विप्रमतीसी

विप्रमतीसी नामक काव्य रुप भी केवल 'कबीर बीजक' में पाया जाता है। इसमें ब्राह्मणों के nia तथा मिथ्याभिमान की आलोचना की गई है। इसका संबंध विप्रमति (ब्राह्मणों की बुद्धि) से बताया जाता है।

ब्राह्मणों की मति की आलोचना करने के लिए, तीस पंक्तियों में गठित काव्यरुप को विप्रमतीसी कहा गया है।

वार

सप्ताह के सातों वारों (दिनों) के नामों को क्रमशः लेकर, की गई उपदेशात्मक रचनाओं वालों काव्यरुप को 'वार' कहा गया है। यह काव्य रुप की रचना केवल आदिग्रंथ में ही प्राप्त होती है।

थिंती

इस काव्य रुप का प्रयोग तिथियों के अनुसार छंद रचना करके साधना की बातें बताने के लिए किया गया है। संत कबीर का यह काव्य रुप भी केवल आदिग्रंथ में पाया जा सकता है।

चाँचर

चाँचर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित काव्यरुप है। कालीदास तथा बाणभ की रचनाओं में चर्चरी गान का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में इसको चर्चरी या चाँचरी कहा जाता था। संत कबीर ने भी अपनी रचनाओं में इसको अपनाया है। 'कबीर बीजक' में यह काव्य रुप प्राप्त होता है। कहा जाता है कि कबीर के समय में इसका पूर्ण प्रचलन था। कबीर ने इसका प्रयोग अध्यात्मिक उपदेशों को साधारण जन को पहुँचनें के लिए किया है।

जारहु जगका नेहरा, मन का बौहरा हो।
जामें सोग संतान, समुझु मन बोरा हो।
तन धन सों का गर्वसी, मन बोरा हो।
भसम–किरिमि जाकि, समुझु मन बौरा हो।
बिना मेवका देव धरा, मन बौरा हो।
बिनु करगिल की इंट, समुझु मन बौरा हो।

बसंत

संत कबीर साहब का एक अन्य काव्यरुप बसंत है। 'बीजक', 'आदिग्रंथ' और 'कबीर ग्रंथावली' तीनों में इसको देखा जा सकता है। बसंत ऋतु में, अभितोल्लास के साथ गाई जाने वाली पद्यों को फागु, धमार, होली या बसंत कहा जाता है। लोकप्रचलित काव्यरुप को ग्रहण कर, अपने उद्देश्य को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए किया है। एक पत्नी अपने पति की प्रशंसा करते हुए कहती है–

भाई मोर मनुसा अती सुजान, धद्य कुटि–कुटि करत बिदान।
बड़े भोर उठि आँगन बाढ़ु, बड़े खांच ले गोबर काढ़
बासि–भात मनुसे लीहल खाय, बड़ धोला ले पानी को गाय
अपने तंया बाधों पाट, ले बेचौंगी हाटे हाट
कहँहि कबिर ये हरिक काज, जोइया के डिंग रहिकवनि लाज

हिंडोला

सावन के महिने में महिलाएँ हिंडोला झुलने के साथ–साथ, गीत भी गाती है। इसी गीत को अनेक स्थानों पर हिंडोला के नाम से जाना जाता है। संत कबीर ने इसी जनप्रचलित काव्यरुप को अपने ज्ञानोपदेश का साधन बनाया है। वह पूरे संसार को एक हिंडोला मानते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं –

भ्रम का हिंडोला बना हुआ है। पाप पुण्य के खंभे हैं। माया ही मेरु हैं, लोभ का मरुषा है विषय का भंवरा, शुभ–अशुभ की रस्सी तथा कर्म की पटरी लगी हुई है। इस प्रकार कबीर साहब समस्त सृष्टि को इस हिंडोले पर झुलते हुए दिखाना चाहते हैं–

भरम–हिंडोला ना, झुलै सग जग आय।
पाप–पुण्य के खंभा दोऊ मेरु माया मोह।
लोभ मरुवा विष भँवरा, काम कीला ठानि।
सुभ–असुभ बनाय डांडी, गहैं दोनों पानि।
काम पटरिया बैठिके, को कोन झुलै आनि।
झुले तो गन गंधर्व मुनिवर, झुलै सुरपति इंद
झुलै तो नारद सारदा, झुलै व्यास फनींद।

बेलि

संत कबीर की बेलि उपदेश प्रधान काव्यरुप है। इसके अंतर्गत सांसारिक मोह ममता में फँसे जीव को उपदेश दिया गया है। 'कबीर बीजक' में दो रचनाएं बेलि नाम से जानी जाती है। इसकी पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' टेक को बार–बार दुहराया गया है।

कबीर साहब की एक बेलि –

हंसा सरवर सरीर में, हो रमैया राम।
जगत चोर घर मूसे, हो रमैया राम।
जो जागल सो भागल हो, रमैया राम।
सावेत गेल बिगोय, हो रमैया राम।

कहरा

कहरा काव्यरुप में क्षणिक संसार के मोह को त्याग का राम का भजन करने पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत यह बताया जाता है कि राम के अतिरिक्त अन्य देवी–देवताओं की पूजा करना व्यर्थ है। यह कबीर की रचनाओं का जन–प्रचलित रुप है –

रामनाम को संबहु बीरा, दूरि नाहिं दूरि आसा हो।
और देवका पूजहु बौरे, ई सम झूठी आसा हो।
उपर उ कहा भौ बौरे, भीटर अजदूँ कारो हो।
तनके बिरघ कहा भौ वौरे, मनुपा अजहूँ बारो हो।

बिरहुली

बिरहुली का अर्थ सर्पिणी है। यह शब्द बिरहुला से बना है, जिसका अर्थ सपं होता है। यह शब्द लोक में साँप के विष को दूर करने वाले गायन के लिए प्रयुक्त होता था। यह गरुड़ मंत्र का प्राकृत नाम है। गाँव में इस प्रकार के गीतों को विरहुली कहा जाता है। कबीर साहब की बिरहुली में विषहर और विरहुली दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। मनरुपी साँप के डस लेने पर कबीर ने बिरहुली कहा –

आदि अंत नहिं होत बिरहुली। नहिं जरि पलौ पेड़ बिरहुली।
निसु बासर नहिं होत बिरहुली। पावन पानि नहिं भूल बिरहुली।
ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली। कथिगेल जोग आपार बिरहुली।
बिषहा मंत्र ने मानै बिरहुली। गरुड़ बोले आपार बिरहुली।

उलटवाँसी

बंधी बधाई विशिष्ट अभिव्यंजना शैली के रुप में, उलटवाँसी भी एक काव्यरुप है। इसमें आध्यात्मिक बातों का लोक विपरीत ढ़ंग से वर्णन किया जाता है। इसमें वक्तव्य विषय की प्रस्तुत करने का एक विशष ढ़ंग होता है –

तन खोजै तब पावै रे।
उलटी चाल चले गे प्राणी, सो सरजै घर आवेरो

धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसिया–

अम्बर बरसै धरती भीजे, यहु जानैं सब कोई।
धरती बरसे अम्बर भीजे, बूझे बिरला कोई।
मैं सामने पीव गोहनि आई।
पंच जना मिलिमंडप छायौ, तीन जनां मिलि लगन लिखाई।

सामान्यरुप में कबीर साहब ने जन–प्रचलित काव्यरुप को अपनाया है। जन–प्रचलित होने के कारण ही सिंहों, माथों, संतों और भक्तों के द्वारा इनको ग्रहण किया गया।

काव्यरुपों के क्षेत्र में भी कबीर साहब को आदर्श गुरु तथा मार्गदर्शक माना गया है। परवर्ती संतों तथा भक्तों ने उनके विचारों और भावों के साथ–साथ काव्यरुपों को भी अपनाया। कबीर साहब ने इन काव्यरुपों को अपना करके महान और अमर बना दिया।

कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीक पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में सांकेतिक, प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रुपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटवाँसियों के सुंदर उदाहरण पाए जाते हैं।

कबीर साहित्य

कबीर के सहिक में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप कि उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ़ि, प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे,

भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमौला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मत-मतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत् के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455-56 के आस-पास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ के पास मानता है।

कबीर जब हुए देश में उथल-पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास की बडी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व कायम करना ही नहीं बल्कि इस्लाम का प्रचार अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मत-मतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था—कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में भक्ति साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुडी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्मचिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता जैसी बातों में उलझा देने

वाले तत्त्वों को भुला त्याग दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवत्प्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीर ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं-भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुतः कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी। वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की। क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलतः मानव व प्राणी मात्र का आध्यात्मिक कल्याण है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट–घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन तथा और भी। "गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाट छाड क्यो जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।" इसी चिंतन में कबीर कहते हैं–"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है–बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।" तथा–"पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई।।"

प्रेम साध्य भी है–साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है। अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुतः आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया–"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि।।" कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्तःकरण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, "संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहे न बाँधी

रे।।" कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये कूँ शोभा नहीं–देख्या ही परमान।।" वह और भी आगे लिखते हैं–"सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार।।" और भी "जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ।।"

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवनदर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्व समग्र रूप से व्यक्त हुआ है। "साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार का झगडा छूटै नाहिं।।" कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। "गुरु गोविन्द दोउ खड़े-काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय।" सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं "ज्ञान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरू मिलिया आई।।" इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं–"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत।।" आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना "नां गुरु मिल्या न शिष्य भया, लालच खेल्या डाव। दुन्यूं बूडे धार में–चढ पाथर की नाव।"

जैसे ही सुमिरण को अंग, यानी मनन की अवस्था, विनती को अंग अर्थात् भगवान के समक्ष अपनी लघुता की अनुभूति तथा पति परमेश्वर के भाव की अभिव्यक्ति है। कबीर ने इस तरह 'अंग' के माध्यम में पचासों अंगों के तहत ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर

किया। हिन्दू–मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा–"कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद दी बनाय। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।" इतना ही नहीं इससे भी बढ़कर लिखा "दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाय। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।" ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों पर उन्होंने चोट की। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया।

कबीर दर्शन में जाति–धर्म का कोई बंधन स्वीकार नहीं है। सारे अलगाववादी विधानों को तोड़कर वह एक शुद्र मानव जाति का निर्माण करता है, इसलिए आज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थी। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान–पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र–मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुआ था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा–सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन–साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख–आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास अध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज में व्याप्त कुरीतियों और जन–समुदाय में सुख–शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रुप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण–व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस–पास, तरह–तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा।।

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर–घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा।।

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर, कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद–भाव, ऊँच–नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों में आग दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं। समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है।"

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि नीति–विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान–शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है–पतन, निराशा और दुख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर–पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्ढू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति।।

इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर–साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श

किया है। अत: आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रुप से सक्षम है।

एक बूँद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुँ राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी। अत: आज भी कबीर साहित्य की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरुरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सके।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा–सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुँह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

सांप्रदायिक तनाव की स्थिति आज देश में सर्वाधिक चिंतनीय है। देश में संप्रदाय के नाम पर लोगों को आपस में खूब लड़ाया जाता है। राजनैतिक दल एवं राजनेता स्वयं जातिवाद या सांप्रदायवाद के प्रतीक बन गए हैं। आज हर वर्ष देश के कुछ भागों में सांप्रदायिक दंगे का भड़क जाना और सैकड़ों बेगुनाहों का खून बह जाना, सामान्य बात हो गई है।

1947 ई. में सांप्रदायिकता को आधार बनाकर देश का विभाजन कर दिया गया। यही सांप्रदायिकता की आग लगातार बढ़ती ही गई, अब तो स्थिति

इतनी अधिक उत्तेजक हो गई है कि इस ओर सभी बुद्धिजीवियों और शुभ–चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रत्येक साल कही–न–कहीं दंगा होता रहता है। हजारों लोग हर दंगे में मारे जाते हैं। हजारों गिरफ्तारियाँ होती हैं। लाखों–करोड़ों की संपत्ति जला दी जाती है। यह सब आपसी धार्मिक मतभेदों की वजह से होता है। आवश्यकता है कि सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखकर, भारत के समस्त नागरिकों को बंधुत्व की भावना सहयोगपूर्वक रहने के प्रति जागरुक किया जाए।

हिंदू तुरुक की एक राह में, सतगुरु है बताई।
कहै कबीर सुनहू हो संतों, राम न कहेउ खुदाई।।

संत महात्मा कबीर ने सांप्रदायिकता का विरोध कड़े शब्दों में किया है। कबीर साहब से अधिक जोरदार शब्दों में सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

सोई हिंदू सो मुसलमान, जिनका रहे इमान।
सो ब्राह्मण जो ब्राह्म गियाला, काजी जो जाने रहमान।।

महात्मा के अनुसार सच्चा हिंदू या मुसलमान वही है, जो इमानदार है और निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करता है। सारे अनर्थों की जड़ यही बेईमानी है। आदमी बईमान हुआ, तब सब अनर्थ कामों की शुरुआत हो गई। आज समाज में चारों तरफ बेईमानी के कारण ही वातावरण दुखी और असहनीय हो रहा है। आज का मनुष्य एक ओर ईश्वर की पूजा करता है और दूसरी ओर मनुष्य का तिरस्कार करता है। प्रेम के महत्व को कबीर साहब इस प्रकार बताते हैं –

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।

कबीर के अनुसार प्रेम ही ऐसा तत्व है, जो पारस्परिक मैत्री का भाव लाता है और कटुता को समाप्त करता है।

काहि कबीर वे दूनों भूले, रामहि किन्हु न पायो।
वे खस्सी वे गाय कटावै, वादाहि जन्म गँवायो।।
जेते औरत मरद उवासी, सो सब रुप तुम्हारा।
कबीर अल्ह राम का, सो गुरु पीर हमारा।।

हिंदू–मुस्लिम एकता के लिए कबीर के उपदेश और उनके द्वारा किया गया कार्य आज सामान्य लोगों के अंदर फैलाने और बताने आवश्यक है। कबीर

ने धार्मिक रुढ़ियों उपासना संबंधी मूढ़ मान्यताओं तथा मंदिर–मस्जिद विषयक अंध आस्थाओं के अंतर्विरोधों को निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

हिंदू कहे वह राम हमारा, तुरुक कहे रहिमाना
सत गहे, सतगुरु को चीन्हे, सतनाम विश्वासा,
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।

वे कहते, प्रत्येक मानव को गुरु भक्ति और साधन का अभ्यास करना चाहिए। इस सत्य की प्राप्ति से सब अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

जो सुख राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।

सुख का आधार धन–संपत्ति नहीं है। इसके अभाव में भी मानव सुख–शांति का जीवन जी सकता है।

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

वे कहते हैं, धरती पर सभी कष्टों की जड़ वासना है, इसके मिटते ही चिंता भी समाप्त हो जाती है और शांति स्वमेव आने लगती है। कबीर के कहने का तात्पर्य है कि पूजा–पाठ साधना कोई शुष्क चीज नहीं है, बल्कि इसमें आनंद है, तृप्ति है और साथ ही सभी समस्याओं का समाधान। इसलिए इसको जीवन में सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। साधना के प्रति लोगों के हृदय में आकर्षण भाव लाने हेतु उन्होंने अपना अनुभव बताया।

इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा,
इस घट अंतर सात समुंदर इसी में नौ लख तारा।

गुरु के बताए साधन पर चलकर ध्यान का अभ्यास करने को वे कहते हैं। इससे दुखों का अंत होगा और अंतर प्रकाश मिलेगा। गुरु भक्ति रखकर साधन पथ पर चलनेवाले सभी लोगों को आंतरिक अनुभूति मिलती है।

कबीर का प्रेम

कंलि खोटा जग अंधेरा, शब्द न माने कोय,
जो कहा न माने, दे धक्का दुई और।

महात्मा कबीर किसी भी स्थिति में हार मानने वाले नहीं थे। वे गलत लोगों को ठीक रास्ते पर लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो–चार धक्के खाना भी पसंद था। इस प्रकार कहा जाता है कि कबीर लौह पुरुष थे। वे मानव को प्रेम को अपनाने कहते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का दूसरा नाम प्रेम

है। इसी तत्व को अपनाने पर जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वतः सुलझ जाती है।

मैं कहता सुरजनहारी, तू राख्यो अरुझाई राखे

कबीर साहब सदा सीधे ढ़ग से जीवन जीने की कला बताते थे। उनका कहना था कि प्रेम के अभाव में यह जीवन नारकीय बन जाता है।

कबीर प्याला प्रेम का अंतर दिया लगाया,
रोम–रोम से रमि रम्या और अमल क्या लाय,
कबीर बादल प्रेम का हम पर वरस्या आई,
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन आई।

यही "प्रेम' सब कुछ है, जिसे पान कर कबीर धन्य हो गये। इस बादल रुपी प्रेम की वर्षा में स्नान कर कबीर की आत्मा तृप्त हो गई और उसका मन आनंद विभोर हो उठा। वे कहते हैं, प्रेम ही सर्व है। उसी के आधार पर व्यक्ति एक दूसरे के साथ बंधुत्व की भावना को जागृत कर सकता है। आज के परिवेश में इसी बंधुत्व की भावना के प्रसार की नितांत आवश्यकता है। कबीर साहब की वाणी आज भी हमें संदेश दे रही है कि संसार में कामयाब होने का एक मात्र मार्ग धर्म और समाज की एकता है।

संत कबीर स्वयं ऐसे परिवार में जन्में थे, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था में अस्पृश्य था। उन्होंने स्वयं वर्ण–व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण–व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता माने जाते हैं। आपने सर्वप्रथम भक्ति परंपराओं का प्रचार किया, जोकि ब्राह्मण–व्यवस्था के विरुद्ध थी। आपने जिस तरह ब्राह्मण–व्यवस्था के गढ में काशी में रहकर, इस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहाँ, "हरिजन सई न जाति' भक्त से समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने इस प्रकार भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया।

तत्कालीन समाज व्यवस्था में जो व्यक्ति स्वयं नहीं पाता था, उसे अंग्रेज विचारक कीलिन विल्सन ने "आउट साइडर" कहा था। भक्ति काल का प्रत्येक कवि "आउट साइंडर" कहलाया, क्योंकि ये कवि रुढियों अन्यायपूर्ण

व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब मध्य काल के ऐसे पहले कवि थे, जिन्हें "आउट साइडर" कहा गया। कबीर लोक, वेद, शास्त्र तथा मंत्र को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब को संग्राम का योद्धा कहा जाए, तो अच्छा होगा। कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण–विचार कहना होता, तो वह जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान है।

कबीर साहब का भक्ति में अत्याधिक विश्वास था। भक्ति से युक्त व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न चंडाल, बल्कि वह सिर्फ भक्त होता है। कबीर साहब ने समाज के आपसी मतभेद को मिटाकर इस प्रकार का संदेश दिया है, जैसे हल्दी पीली होती है और चुना श्वेत, पर दोनों मिलकर अपना रंग मिलाकर लाल रंग की होली में परिणत हो जाते हैं –

कबीर हरदी पीयरी, चुना उजल भाय।
राम सनेही यूँ मिले, दन्यूं बस गमाय॥

कबीर की उपर्युक्त रमैनी के अनुसार, राम के भक्त विभिन्न जातियों का परित्याग का एकाकार हो जाते हैं और वे अपने विभिन्न सांप्रदायिक भाव ईश्वर प्रेम की लालिमा में समाहित कर देते हैं। इस प्रकार काबा और काशी या राम और रहीम का भेद मिट जाता है, सब एक ही हो जाते हैं –

कावा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोठ चून मैदा भया, बैठो कबीरा जीम॥

इस प्रकार कबीर साहब भक्ति के द्वारा सामाजिक पाथेवय को मिटाते हैं और मन के विधान का अतिक्रमण करने का उपदेश देते हैं।

4

रसखान

सैय्यद इब्राहीम 'रसखान' (अंग्रेजी:Raskhan) का हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। रसखान को 'रस की खान(कान)' कहा जाता है। इनके काव्य में भक्ति, श्रृंगार रस दोनों प्रधानता से मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और प्रभु के सगुण और निर्गुण निराकार रूप के प्रति श्रद्धालु हैं। रसखान के सगुण कृष्ण लीलाएं करते हैं। यथा–बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला आदि। उन्होंने अपने काव्य की सीमित परिधि में इन असीमित लीलाओं का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिन मुस्लिम हरिभक्तों के लिये कहा था, 'इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिए' उनमें 'रसखान' का नाम सर्वोपरि है। सैय्यद इब्राहीम 'रसखान' का जन्म उपलब्ध स्रोतों के अनुसार सन् 1533 से 1558 के बीच कभी हुआ होगा। अकबर का राज्यकाल 1556–1605 है, ये लगभग अकबर के समकालीन हैं। जन्मस्थान 'पिहानी' कुछ लोगों के मतानुसार दिल्ली के समीप है। कुछ और लोगों के मतानुसार यह 'पिहानी' उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले में है। मृत्यु के बारे में कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं मिलते हैं। रसखान ने भागवत का अनुवाद फारसी में भी किया।

रसखान के दोहे महावन, मथुरा

जीवन परिचय

रसखान के जन्म के संबंध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। अनेक विद्वानों ने इनका जन्म संवत् 1615 ई. माना है और कुछ विद्वानों ने 1630 ई. माना है। रसखान स्वयं बताते हैं कि गदर के कारण दिल्ली 'मशान' बन चुकी थी, तब उसे छोड़कर वे ब्रज चले गये। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर पता चलता है कि उपर्युक्त गदर सन् 1613 ई. में हुआ था। उनकी बात से ऐसा प्रतीत होता है कि वह गदर के समय वयस्क थे और उनका जन्म गदर के पहले ही हुआ होगा। रसखान का जन्म संवत् 1590 ई. मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। भवानी शंकर याज्ञिक ने भी यही माना है। अनेक तथ्यों के आधार पर उन्होंने अपने इस मत की पुष्टि भी की है। ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर भी यही तथ्य सामने आता है। यह मानना अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है कि रसखान का जन्म 1590 ई. में हुआ होगा।

जन्म स्थान

रसखान प्रेक्षागृह, हरदोई

रसखान के जन्म स्थान के विषय में अनेक विद्वानों ने अनेक मत प्रस्तुत किए हैं। कई तो रसखान के जन्म स्थान पिहानी अथवा दिल्ली को बताते हैं, किंतु यह कहा जाता है कि दिपाली शब्द का प्रयोग उनके काव्य में केवल एक बार ही मिलता है। जैसा कि पहले लिखा गया कि रसखान ने गदर के कारण दिल्ली को 'मशान बताया है। उसके बाद की जिंदगी उसकी मथुरा में गुजरी। शिवसिंह सरोज तथा हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास तथा ऐतिहासिक तथ्यों एवं अन्य पुष्ट प्रमाणों के आधार पर रसखान की जन्म-भूमि पिहानी जिला हरदोई माना जाए। हरदोई जनपद मुख्यालय पर निर्मित एक प्रेक्षाग्रह का नाम 'रसखान प्रेक्षाग्रह' रखा गया है। पिहानी और बिलग्राम ऐसी जगह हैं, जहाँ हिंदी के बड़े-बड़े एवं उत्तम कोटि के मुसलमान कवि पैदा हुए।

नाम एवं उपनाम

जन्म स्थान तथा जन्म काल की तरह रसखान के नाम एवं उपनाम के संबंध में भी अनेक मत प्रस्तुत किए गए हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी

पुस्तक में रसखान के दो नाम लिखे हैं– सैय्यद इब्राहिम और सुजान रसखान। जबकि सुजान रसखान की एक रचना का नाम है। हालांकि रसखान का असली नाम सैयद इब्राहिम था और 'खान' उसकी उपाधि थी। नवलगढ़ के राजकुमार संग्रामसिंह जी द्वारा प्राप्त रसखान के चित्र पर नागरी लिपि के साथ–साथ फारसी लिपि में भी एक स्थान पर 'रसखान' तथा दूसरे स्थान पर 'रसखाँ' ही लिखा पाया गया है। उपर्युक्त सबूतों के आधार पर कहा जा सकता है कि रसखान ने अपना नाम 'रसखान' सिर्फ इसलिए रखा था कि वह कविता में इसका प्रयोग कर सके। फारसी कवियों की नाम चसिप्त में रखने की परंपरा का पालन करते हुए रसखान ने भी अपने नाम खाने के पहले 'रस' लगाकर स्वयं को रस से भरे खान या रसीले खान की धारणा के साथ काव्य–रचना की। उनके जीवन में रस की कमी न थी। पहले लौकिक रस का आस्वादन करते रहे, फिर अलौकिक रस में लीन होकर काव्य रचना करने लगे। एक स्थान पर उनके काव्य में 'रसखाँ' शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

नैन दलालनि चौहटें में मानिक पिय हाथ।
रसखाँ' ढोल बजाई के बेचियों हिय जिय साथ।।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका नाम सैय्यद इब्राहिम तथा उपनाम 'रसखान' था।

बाल्यकाल तथा शिक्षा

रसखान एक जागीरदार पिता के पुत्र थे। इसलिए इनका लालन–पालन बड़े लाड़–प्यार से हुआ माना जाता है। ऐसा इसलिए कहा जाता है कि उनके काव्य में किसी विशेष प्रकार की कटुता का सरासर अभाव पाया जाता है। एक संपन्न परिवार में पैदा होने के कारण उनकी शिक्षा अच्छी और उच्च कोटि की गई थी। उनकी यह विद्वत्ता उनके काव्य की साधिकार अभिव्यक्ति में जग जाहिर होते हैं। रसखान को फारसी, हिंदी एवं संस्कृति का अच्छा ज्ञान था। फारसी में उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद करके यह साबित कर दिया था। इसको देख कर इस बात का अभास होता है कि वह फारसी और हिंदी भाषाओं का अच्छा वक्ता होंगे। रसखान ने अपना बाल्य जीवन अपार सुख–सुविधाओं में गुजारा होगा। उन्हें पढ़ने के लिए किसी मकतब में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी होगी।

व्यक्तित्व

अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है सैयद इब्राहीम उपनाम रसखान कवि, हरदोई जिले के अंतर्गत पिहानी के रहने वाले, जन्म काल 1573 ई.। यह पहले मुसलमान थे। बाद में वैष्णव होकर ब्रज में रहने लगे थे। इनका वर्णन 'भक्तमाल' में है। इनके एक शिष्य कादिर बख्श हुए। सांसारिक प्रेम की सीढ़ी से चढ़कर रसखान भगवदीय प्रेम की सबसे ऊँची मंजिल तक कैसे पहुँचे, इस संबंध की दो आख्यायिकाएँ प्रचलित हैं। 'वार्ता' में लिखा है कि रसखानि पहले एक बनिये के लड़के पर अत्यंत आसक्त थे। उसका जूठा तक यह खा लेते थे। एक दिन चार वैष्णव बैठे बात कर रहे थे कि भगवान श्रीनाथ जी से प्रीति ऐसी जोड़नी चाहिए, जैसे प्रीति रसखान की उस बनिये के लड़के पर है। रसखान ने रास्ते में जाते हुए यह बात सुन ली। उन्होंने पूछा कि 'आपके श्रीनाथ जी का स्वरूप कैसा है?' वैष्णवों ने श्रीनाथ जी का एक सुंदर चित्र उन्हें दिखाया। चित्रपट में भगवान की अनुपम छवि देखकर रसखानि का मन उधर से फिर गया। प्रेम की विह्वल दशा में श्रीनाथ जी का दर्शन करने यह गोकुल पहुँचे। गोसाई विट्ठलदास जी ने इनके अंतर के परात्पर प्रेम को पहचानकर इन्हें अपनी शरण में ले लिया। रसखानि श्रीनाथ जी के अनन्य भक्त हो गए।

कविताएँ

रसखान की कविताओं के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं–'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका'। 'सुजान रसखान' में 139 सवैये और कवित्त है। 'प्रेमवाटिका' में 52 दोहे हैं, जिनमें प्रेम का बड़ा अनूठा निरूपण किया गया है। रसखानि के सरस सवैय सचमुच बेजोड़ हैं। सवैया का दूसरा नाम 'रसखान' भी पड़ गया है। शुद्ध ब्रजभाषा में रसखानि ने प्रेमभक्ति की अत्यंत सुंदर प्रसादमयी रचनाएँ की हैं। यह एक उच्च कोटि के भक्त कवि थे, इसमें संदेह नहीं।

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वालन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं बसेरो करौं मिल कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन।।

साहित्यिक विशेषताएँ

सैय्यद इब्राहिम रसखान के काव्य के आधार भगवान श्रीकृष्ण हैं। रसखान ने उनकी ही लीलाओं का गान किया है। उनके पूरे काव्य–रचना में

भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति की गई है। इससे भी आगे बढ़ते हुए रसखान ने सुफिज्म (तसव्वुफ) को भी भगवान श्रीकृष्ण के माध्यम से ही प्रकट किया है। इससे यह कहा जा सकता है कि वे सामाजिक एवं आपसी सौहार्द के कितने हिमायती थे।

होली वर्णन

कृष्ण भक्त कवियों की तरह रसखान ने भी कृष्ण जी की उल्लासमयी लीलाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने अपने पदों में कृष्ण को गोपियों के साथ होली खेलते हुए दिखाया गया है, जिनमें कृष्ण गोपियों को भिगो देते हैं। गोपियाँ फाल्गुन के साथ कृष्ण के अवगुणों की चर्चा करते हुए कहती हैं कि कृष्ण ने होली खेल कर हम में काम–वासना जागृत कर दी हैं। पिचकारी तथा घमार से हमें भिगो दिया है। इस तरह हमारा हार भी टूट गया है। रसखान अपने पद में कृष्ण को मर्यादाहीन चित्रित किया है–

आवत लाल गुलाल लिए मग सुने मिली इक नार नवीनी।
त्यों रसखानि जगाइ हिये यटू मोज कियो मन माहि अधीनी।
सारी फटी सुकुमारी हटी, अंगिया दरकी सरकी रंग भीनी।
लाल गुलाल लगाइ के अंक रिझाइ बिदा करि दीनी।

कला पक्ष

कवि ने कहीं चमत्कार लाने के लिए अलंकारों को बरबस ठूँसने की चेष्टा नहीं की है। भाव और रस के प्रवाह पर भी उसकी दृष्टि केन्द्रित रही है। भावों और रसों की अभिव्यक्ति को उत्कृष्ट बनाने के लिए ही अलंकारों की योजना की गई है। उचित स्थान पर अलंकारों का ग्रहण किया गया है। उन्हें दूर तक खींचने का व्यर्थ प्रयास नहीं किया गया है। औचित्य के अनुसार ठीक स्थान पर उनका त्याग कर दिया गया है। रसखान द्वारा प्रयुक्त अलंकार अपने 'अलंकार' नाम को सार्थक करते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक की निबंधना में कवि ने विशेष रुचि दिखाई है। बड़ी कुशलता के साथ उनका सन्निवेश किया है, उन्हें इस विधान में पूर्ण सफलता मिली है। अलंकारों की सुन्दर योजना से उनकी कविता का कला–पक्ष निःसन्देह निखर आया है।

भाव पक्ष

रसखान के काव्य में छः स्थायी भावों की निबंधना मिलती है–रति, निर्वेद, उत्साह, हास, वात्सल्य और भक्ति। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने परंपराप्रथिता चार स्थायी भावों को ही गौरव दिया है, जिनमें अन्यतम भाव रति का है। क्रोध, जुगुप्ता, विस्मय, शोक और भय की उपेक्षा का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि इन भावों का रति से मेल नहीं है। रसखान प्रेमी जीव थे, अतएव उन्होंने अपनी कविता में तीन प्रकार के रति भावों की रति, वात्सल्य और भक्ति की व्यंजना किया जो भाव इनमें विशेष सहायक हो सकते थे उन्हें यथास्थान अभिव्यक्ति किया। दूसरा कारण यह भी है कि उनकी रचना मुक्तक हैय अतएव प्रबन्ध काव्य की भाँति उसमें सभी प्रकार के भावों का सन्निवेश आवश्यक भी नहीं है।

रस संयोजन

रसखान ने भक्तिरस के अनेक पद लिखे हैं, तथापि उनके काव्यों में भक्तिरस की प्रधानता नहीं है। वे प्रमुख रूप से शृंगार के कवि हैं। उनका शृंगार कृष्ण की लीलाओं पर आश्रित है। अतएव सामान्य पाठक को यह भ्रांति हो सकती है कि उनके अधिकांश पद भक्ति रस की अभिव्यक्ति करते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से जिन पदों के द्वारा पाठक के मन में स्थित ईश्वर विषयक-रतिभाव रसता नहीं प्राप्त करता, उन पदों को भक्ति रस व्यंजक मानना तर्क संगत नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि रसखान भक्त थे और उन्होंने अपनी रचनाओं में भजनीय कृष्ण का सरस रूप से निरूपण किया है।

भक्ति भावना

हिन्दी-साहित्य का भक्ति-युग (संवत् 1375 से 1700 वि0 तक) हिन्दी का स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग में हिन्दी के अनेक महाकवियों–विद्यापति, कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, नंददास, तुलसीदास, केशवदास, रसखान आदि ने अपनी अनूठी काव्य-रचनाओं से साहित्य के भण्डार को सम्पन्न किया। इस युग में सत्रहवीं शताब्दी का स्थान भक्ति-काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, रसखान आदि की रचनाओं ने इस शताब्दी के गौरव को बढ़ा दिया है। भक्ति का जो आंदोलन दक्षिण से चला वह हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल तक सारे भारत में व्याप्त हो चुका था।

उसकी विभिन्न धाराएं उत्तर भारत में फैल चुकी थीं। दर्शन, धर्म तथा साहित्य के सभी क्षेत्रों में उसका गहरा प्रभाव था। एक ओर सांप्रदायिक भक्ति का जोर था, अनेक तीर्थस्थान, मंदिर, मठ और अखाड़े उसके केन्द्र थे। दूसरी ओर ऐसे भी भक्त थे जो किसी भी तरह की सांप्रदायिक हलचल से दूर रह कर भक्ति में लीन रहना पसंद करते थे। रसखान इसी प्रकार के भक्त थे। वे स्वच्छंद भक्ति के प्रेमी थे।

भाषा

सोलहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा साहित्यिक आसन पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी। भक्त-कवि सूरदास इसे सार्वदेशिक काव्य भाषा बना चुके थे। किन्तु उनकी शक्ति भाषा सौष्ठव की अपेक्षा भाव द्योतन में अधिक रमी। इसीलिए बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ब्रजभाषा का व्याकरण बनाते समय रसखान, बिहारी लाल और घनानन्द के काव्याध्ययन को सूरदास से अधिक महत्त्व देते हैं। बिहारी की व्यवस्था कुछ कड़ी तथा भाषा परिमार्जित एवं साहित्यिक है। घनानन्द में भाषा-सौन्दर्य उनकी 'लक्षणा' के कारण माना जाता है। रसखान की भाषा की विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। उन्होंने ब्रजभाषा के साथ खिलवाड़ न कर उसके मधुर, सहज एवं स्वाभाविक रूप को अपनाया। साथ ही बोलचाल के शब्दों को साहित्यिक शब्दावली के निकट लाने का सफल प्रयास किया।

दर्शन

अब प्रश्न यह उठता है कि जब वे भक्त थे और उनकी रचना भक्ति प्रधान है तो उसका कोई दर्शन भी अवश्य होगा। जहाँ आलोचक की जानकारी के लिए नियमों की शृंखला में कोई वस्तु नहीं बँधती, वहाँ उसे स्वच्छंद कह दिया जाता है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं। प्रत्येक कार्य का मूल कारण अवश्य रहता है। मिश्र जी ने एक बात बार-बार कही है कि रसखान में विदेशीपन की झलक अवश्य दिखाई पड़ती है। यह प्रेममार्गी भक्त थे। लौकिक पक्ष में इनका विरह फारसी काव्य की वंदना से प्रभावित है, अलौकिक पक्ष में सूफियों की प्रेमपीर से। आगे कहते हैं स्वच्छंद कवियों ने प्रेम की पीर सूफी कवियों से ही ली है इसमें कोई संदेह नहीं।

प्रकृति वर्णन

मानस और उसको धारण करने वाले शरीर को तथा मनुष्य के निर्माण भाग को छोड़कर अन्य समस्त चेतन और अचेतन सृष्टि-प्रसार को प्रकृति स्वीकार किया जाता है। व्यावहारिक रूप से तो जितनी मानवेतर सृष्टि है उसको हम प्रकृति कहते हैं किन्तु दार्शनिक दृष्टि से हमारा शरीर और मन उसकी ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति के अंतर्भूत हैं। काव्य में प्रकृति चित्रण हर काल में मिलता है। संस्कृत काव्य से लेकर आधुनिक काव्य तक में प्रकृति के दर्शन होते हैं। यह स्वाभाविक भी है। मानव अध्ययन भले ही काव्य का मुख्य विषय माना गया हो किन्तु प्रकृति के साहचर्य बिना मानव की चेष्टाएं और मनोदशाएं भावहीन-सी होने लगती हैं। यमुना तट, वंशीवट, कदंब के वृक्ष और ब्रज के वन बाग-तड़ाग-बिना नट नागर कृष्ण की समस्त लीलाएं शून्य एवं नीरस-सी प्रतीत होती हैं। अतः प्रकृति के अभाव में किसी सुंदर काव्य की कल्पना कुछ अधूरी-सी ही प्रतीत होती है। काव्य में प्रकृति चित्रण भिन्न-भिन्न रूपों में मिलता है। रसखान के काव्य में प्रकृति की छटा तीन रूपों में दृष्टिगोचर होती है।

कृष्ण की विहार-भूमि वृन्दावन, करील कुंज, कालिंदी नदी कूल आदि का विशद वर्णन प्रकृति सहचरी के रूप में मिलता है।

संयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रकृति मानव भावनाओं की पोषिका रही है। कृष्ण-गोपिका मिलन और विरह वर्णन में रसखान ने प्रकृति उद्दीपन विभावों के अंतर्गत दिखाया है।

साथ ही अपने आराध्य के कोमल सौंदर्यमय पक्ष के निरूपण के लिए अलंकार रूप में प्रकृति को अपनाया है।

काव्य साधना

रसखान की भाषा पर्याप्त परिमार्जित और सरस तथा काव्योचित थी। ब्रजभाषा में जितनी उत्तमता से अपने हृदय के भाव वे व्यक्त कर सके, उतना और कवियों के लिये कष्ट साध्य था। उनकी परमोत्कृष्ट विशेषता यह थी कि उन्होंने अपने लौकिक प्रेम को भगवद् प्रेम में रूपान्तरित कर दिया। असार संसार का परित्याग करके सर्वथा नन्दकुमार के दरबार के सदस्य हो गये।

एक समय कहीं भागवत कथा में उपस्थित थे। व्यास गद्दी के पास श्यामसुन्दर का चित्र रखा हुआ था। उनके नयनों में भगवान का रूपमाधुर्य समा

गया। उन्होंने प्रेममयी मीठी भाषा में व्यास से भगवान श्रीकृष्ण का पता पूछा और ब्रज के लिये चल पड़े। रासरसिक नन्दनन्दन से मिलने के लिये विरही कवि का हृदय-बीन बज उठा। वे अपनी प्रेमिका की बात सोचते जाते थे। अभी थोड़े ही समय पहले उसने कहा था कि–'जिस तरह मुझे चाहते हो, उसी तरह यदि श्रीकृष्ण को चाहते तो भवसागर से पार उतर जाते'। पैर और वेग से आगे बढ़ने लगे, उसी तरह नहीं। उससे भी अधिक चाहने के लिये वे श्रीकृष्ण की लीला भूमि में जा रहे थे। अभी उन्होंने कल ही भागवत के फारसी अनुवाद में गोपी प्रेम के सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रेममयी स्फूर्ति पायी थी। उन्होंने अपने मन को बार-बार धिक्कारा। मूर्ख ने लोक-बन्धन में मुक्ति-सुख मान लिया था। उनके कण्ठ में भक्ति की मधुर रागिनी ने अमृत घोल दिया। ब्रजरज का मस्तक से स्पर्श होते ही, भगवती कालिन्दी के जल की शीतलता के स्पर्श-सुख से उन्मत्त समीर के मदिर कम्पन की अनुभूति होते ही, श्यामतमाल से अरुझी लताओं की हरियाली का नयनों में आलोड़न होते ही वे अपनी सुधि-बुधि खो बैठे। संसार छूट गया, भगवान में मन रम गया। उन्होंने वृन्दावन के ऐश्वर्य की स्तुति की, भक्ति का भाष्य किया। उन्होंने वृन्दावन के जड़, जीव, चेतन और जंगम में आत्मानुभूति की आत्मीयता देखी। पहाड़, नदी और विहंगों से अपने जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध जोड़ा। वे कह उठे-

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर कौ तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौं निधि कौ सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।।
'रसखान' सदा इन नयनन्हिं सौं ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं।।

कितना अद्‌भुत आत्मसमर्पण था, भावमाधुर्य था। प्रेमसुधा का निरन्तर पान करते वे ब्रज की शोभा देख रहे थे। उनके पैरों में विरक्ति की बेड़ी थी, हाथों में अनुरक्ति की हथकड़ी थी, हृदय में भक्ति की बन्धन-मुक्ति थी। रसखान के दर्शन से ब्रज धन्य हो उठा। ब्रज के दर्शन से रसखान का जीवन सफल हो गया। वे गोवर्धन पर श्रीनाथ जी के दर्शन के लिये मन्दिर में जाने लगे, द्वारपाल ने धक्का देकर निकाल दिया। श्रीनाथ जी के नयन रक्त हो उठे। इधर रसखान की स्थिति विचित्र थी। उन्हें अपने प्राणेश्वर श्यामसुन्दर का भरोसा था। अन्न-जल छोड़ दिया, न जाने किन पापों के फलस्वरूप पौरिया ने मन्दिर से निकाल दिया था। तीन दिन बीत गये, भक्त के प्राण कलप हो रहे थे। उधर भगवान भी भक्त की भावना के अनुसार विकल थे। रसखान पड़े-पड़े सोच रहे थे-

देस बिदेस के देखे नरेसन, रीझि की कोउ न बूझ करैगौ।
तातें तिन्हें तजि जान गिरयौ गुन सौं गुन औगुन गांठि परैगौ॥
बांसुरीवारौ बड़ौ रिझवार है स्याम जो नैकु सुढ़ार ढरैगौ।
लाड़िलौ छैल वही तो अहीर कौ हमारे हिये की हरैगौ॥

अहीर के छैल ने उनके हृदय की वेदना हर ही तो ली। भगवान ने साक्षात दर्शन दिये, उसके बाद गोसाईं श्रीविट्ठलनाथ जी ने उनको गोविन्दकुण्ड पर स्नान कराकर दीक्षित किया। रसखान पूरे 'रसखानि' हो गये। भगवान के प्रति पूर्णरूप से समर्पण का भाव उदय हुआ॥ रसखान की काव्य-साधना पूरी हो गयी। उनके नयनों ने गवाही दी-

ब्रह्म मैं ढूंढ़डों पुराननि गाननि, वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यों सुन्यों कबहुं न कितूं वह कैसे सरूप ओ कैसे सुभायन॥
टेरत टेरत हारि पर्यौ 'रसखान' बतायौ न लोग लुगायन।
देख्यों, दुरयौ वह कुंज कुटीर में बैठडौ पलोटतु राधिका पायन॥

शेष, गणेश, महेश, दिनेश और सुरेश जिनका पार नहीं पा सके, वेद अनादि, अनन्त, अखण्ड, अभेद कहकर नेति-नेति के भ्रमसागर में डूब गये, उनके स्वरूप का इतना भव्य रसमय दर्शन जिस सुन्दर रीति से रसखान ने किया, वह इतिहास की एक अद्‌भुत घटना है। भक्ति-साहित्य का रहस्यमय वैचित्र्य है। वे आजीवन ब्रज में ही भगवान की लीला को काव्यरूप देते हुए विचरण करते रहे। भगवान ही उनके एकमात्र स्नेही, सखा और सम्बन्धी थे।

दिव्य धाम यात्रा

पैतालीस साल की अवस्था में रसखान ने भगवान के दिव्य धाम की यात्रा की। प्रेमदेवता राधारमण ने अन्तिम समय में उनको दर्शन दिया था। उन्होंने भगवान के सामने यही कामना की, विदा-वेला में केवल इतना ही निवेदन किया-

मानुष हौं तौ वही 'ससखान' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तौ कहा बस मेरौ चरौं नित नंद की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ जो धरयौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं नित कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

भक्त के हृदय की विवशता का कितना मार्मिक आत्मनिवेदन है यह। भगवान की लीला से सम्बद्ध दृश्यों, स्थलों, जीवों के प्रति कितनी समीचीन

आत्मीयता है। भगवान के सामने ही उनके प्राण चल बसे। जिनके चरणों की रज के लिये कोटि-कोटि जन्मों तक मृत्यु के अधिदेवता यम तरसा करते हैं, उन्होंने भक्त की कीर्ति को समुज्ज्वलतम और नितान्त अक्षुण्ण रखने के लिये अपने हाथों से अन्त्येष्टि-क्रिया की। प्रभु की कृपा का अन्त पाना कठिन है, असम्भव है। प्रेम के साम्राज्य में उनकी कृपा का दर्शन रसखान जैसे भक्तों के ही सौभाग्य की बात है।

सवैया

मानुष हों तौ वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं बसेरो करौं मिल कालिंदी कूल कदंब की डारन।।1।।
जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निदा नाम उचारन।
मो कत नीकी करै करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि नहौं ब्रज रेनुका-संग-सँवारन।
खास निवास लियौ जु पै तो वही कालिंदी-कूल-कदंब की डारन।।2।।
बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के संग और मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखान वही रसखानि जु है रसखानि सों है रसखानी।।3।।

दोहा

कहा करै रसखानि को, को चुगुल लबार।
जो पै राखनहार हे, माखन-चाखनहार।।4।।
विमल सरल सरखानि, भई सकल रसखानि।
सोई नब रसखानि कों, चित चातक रसखानि।।5।।
सरस नेह लवलीन नव, द्वै सुजानि रसखानि।
ताके आस-बिसास सों पगे ***प्रान रसखानि।।6।।***

कृष्ण का अलौकिकत्व

सवैया

संकर से सुर जाहि भजैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावैं।
नैंक हियें जिहि आनत ही जड़ मूढ़ महा रसखान कहावैं।
जा पर देव अदेव भू-अंगना वारत-प्रानन प्रानन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।7।।
सेष, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।
नारद से सुक ब्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।8।।
गावैं सुनि गनिका गंधरब्ब और सारद सेष सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समायि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत।।9।।
लाय समाधि रहे ब्रह्मादिक योगी भये पर अंत न पावैं।
साँझ ते भोरहिं भोर ते साँझति सेस सदा नित नाम जपावैं।
ढूँढ़ फिरै तिरलोक में साख सुनारद लै कर बीन बजावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।10।।
गुँज गरें सिर मोरपखा अरु चाल गयंद की मो मन भावै।
साँवरो नंदकुमार सबै ब्रजमंडली में ब्रजराज कहावै।
साज समाज सबै सिरताज औ लाज की बात नहीं कहि आवै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै।।11।।
ब्रह्म मैं ढूँढ़यौ पुरानन गानन बेद-रिचा सुनि चौगुन चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ वह सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्यौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन।
देखौ दुरौ वह कुंज-कुटीर में बैठी पलोटत राधिका-पायन।।12।।
कंस कुढ़यौ सुन बानी आकास की ज्यावनहारहिं मारन धायौ।
भादव साँवरी आठई कों रसखान महाप्रभु देवकी जायौ।
रैनि अँधेरी में लै बसुदेव महायन में अरगै धरि आयौ।
काहु न चौजुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ।।13।।

कवित्त

संभु धरै ध्यान जाको जपत जहान सब,
तातें न महान और दूसर अवरेख्यौ मैं।
कहै दसखान वही बालक सरूप धरै,
जाको कछु रूप रंग अद्‌भुत अवलेख्यौ मैं।
कहा कहूँ आली कछु कहती बनै न दसा,
नंद जी के अंगना में कौतुक एक देख्यौ मैं।
जगत को ठाटी महापुरुष विराटी जो,
निरंजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं।।14।।
वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत हैं रैन-दिन,
सदासिव सदा ही धरत ध्यान गाढ़े हैं।
वेई विष्नु जाके काज मानी मूढ़ राजा रंक,
जोगी जती ह्वै कै सीत सह्यौ अंग डाढ़े हैं।
वेई ब्रजचंद रसखानि प्रान प्रानन के,
जाके अभिलाख लाख-लाख भाँति बाढ़े हैं।
जसुधा के आगे बसुधा के मान-मौचन से,
तामरस-लोचन खरोचन को ठाढ़े हैं।।15।।

अनन्य भाव

सवैया

सेष सुरेस दिनेस गनेस अजेस धनेस महेस मनावौ।
कोऊ भवानी भजौ मन की सब आस सबै विधि जोई पुरावौ।
कोऊ रमा भजि लेहु महाधन कोऊ कहूँ मन वाँछित पावौ। ?
पै रसखानि वही मेरा साधन और त्रिलौक रहौ कि बसावौ।।16।।?
द्रौपदी अरु गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी, प्रहलाद को कैसे हर्यो दुख भारो।
काहे कौं सोच करै रसखानि कहा करि है रबिनंद विचारो।
ताखन जाखन राखियै माखन-चाखनहारो सो राखनहारो।।17।।
देस-बदेस के देखे नरेसन रीझ की कोऊ न बूझ करैगो।
तातें तिन्हैं तजि जानि गिरयौ गुन सौगुन गाँठि परैगो।

बाँसुरीबारो बड़ो रिझवार है स्याम जु नैसुक ढार ढरैगौ।
लाड़लौ छैल वही तौ अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगौ।।18।।
संपति सौं सकुचाइ कुबेरहिं रूप सौ दीनी चिनौती अनंगहिं।
भोग कै कै ललचाइ पुरंदर जोग कै गंगलई धर मंगहिं।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि रसै रसना जौ जु मुक्ति-तरंगहिं।
दै चित ताके न रंग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रंगहिं।।19।।
कंचन-मंदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा झलकयत।
प्रात ही तें सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मधवा ललचौयत।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि जौ साँवरे ग्वार सों नेह न लैयत।।20।।

कवित्त

कहा रसखानि सुख संपत्ति समार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को।
कहा साधे पंचानल, कहा सोए बीच नल,
कहा जीति लाए राज सिंधु आर-पार को।
जप बार-बार तप संजम वयार-व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हौं नहीं प्यार नहीं सैयो दरबार, चित्त,
चाह्यौ न निहार्यौ जौ पै नंद के कुमार को।।21।।
कंचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मनिक-उजारे सों।
और प्रभुताई अब कहाँ लौं बखानौं प्रति–
हारन की भीर भूप, टरत न द्वारे सों।
गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद,
बीस बार गाइ, ध्यान कीजत, सबारे सों।
ऐरे ही भए तो नर कहा रसखानि जो पै,
चित्त दै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सों।।22।।

सवैया

एक सु तीरथ डोलत है इक बार हजार पुरान बके हैं।
एक लगे जप में तप में इक सिद्ध समाधिन में अटके हैं।

चेत जु देखत हौ रसखान सु मूढ़ महा सिगरे भटके हैं।
साँचहि वे जिन आपुनपौ यह स्याम गुपाल पै वारि दके हैं।।23।।
सुनियै सब की कहिये न कछू रहियै इमि भव-बागर मैं।
करियै ब्रत नेम सचाई लिये जिन तें तरियै मन-सागर मैं।
मिलियै सब सों दुरभाव बिना रहिये सतसंग उजागर मैं।
रसखानि गुबिंदहिं यौ भजियै जिमि नागरि को चित गागर मैं।।24।।
है छल की अप्रतीत की मूरति मोद बढ़ावै विनोद कलाम में।
हाथ न ऐसे कछू रसखान तू क्यों बहकै विष पीवत काम में।
है कुच कंचन के कलसा न ये आम की गाँठ मठीक की चाम में।
बैनी नहीं मृगनैनिन की ये नसैनी लगी यमराज के धाम में।।25।।

मिलन

सवैया

मोर के चंदन मौर बन्यौ दिन दूलह है अली नंद को नंदन।
श्री वृषभानुसुता दुलही दिन जोरि बनी बिधना सुखकंदन।
आवै कह्यौ न कछू रसखानि हो दोऊ बंधे छबि प्रेम के फंदन।
जाहि बिलोकें सबै सुख पावत ये ब्रजजीवन है दुखदंदन।।26।।
मोहिनी मोहन सों रसखानि अचानक भेंट भई बन माहीं।
जेठ की घाम भई सुखघाम आनंद हौ अंग ही अंग समाहीं।
जीवन को फल पायौ भटू रस-बातन केलि सों तोरत नाहीं।
कान्ह को हाथ कंधा पर है मुख ऊपर मोर किरीट की छाहीं।।27।।
लाड़ली लाल लसैं लखि वै अलि कुंजनि पुंजनि मैं छबि गाढ़ी।
उजरी ज्यों बिजुरी सी जुरी चहुँ गुजरी केलि-कला सम बाढ़ी।
त्यौ रसखानि न जानि परै सुखिया तिहुँ लौकन की अति बाढ़ी।
बालक लाल लिए बिहर छहरैं बर मोरमुखी सिर ठाड़ी।।28।।

बाल-लीला

सवैया

लाल की आज छटी ब्रज लोग अनंदित नंद बढ़यौ अन्हवावत।
चाइन चारु बधाइन लै चहुँ और कुटुंब अघात न यावत।

नाचत बाल बड़े रसखान छके हित काहू के लाज न आवत।
तैसोइ मात पिताउ लह्यौ उलह्यो कुलही कुल ही पहिरावत।।29।।
'ता' जसुदा कह्यो धेनु की ओठ ढिंढोरत ताहि फिरैं हरि भूलैं।
ढूँवनि कूँ पग चारि चलै मचलैं रज मांहि विथूरि दुकूलैं।
हेरि हँसे रसखान तबै उर भाल तैं टारि कै बार लटूलैं।
सो छवि देखि अनंदन नंदजू अंगन अंग समात न कूलैं।।30।।
आजु गई हुती भोर ही हौं रसखान रई वटि नंद के भौनहिं।
वाकौ जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहिं।
तेल लगाइ लगाइ कै अँजन भौंहें बनाइ बनाइ डिठौनहिं।
डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यों चुचकारत छौनहिं।।31।।
धूरि भरे अति शोभित श्यामजू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना पर पैंजनी बाजति पौरी कछोटी।
वा छबि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज-कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सों ले गयौ माखन रोटी।।32।।

रूप-माधुरी

सवैया

मोतिन लाल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अंग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चारयौ दिसानि की लै छबि आनि के झाँकै झरोखे मैं बाँके बिहारी।।33।।
आवत हैं बन तें मनमोहन गाइन संग लसै ब्रज-ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला।
हेरत टेरि थकै जहुं ओर तैं झाँकि झरोखन तें ब्रज-बाला।
देखि सुर आनन कों रसखानि तज्यौ सब द्यौस को ताप-कसाला।।34।।

कवित्त

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैयाँ पाछें ग्वाल मृदु तानि री।
तैसी धुनि बाँसुरी को मधुर-मधुर जैसी,

बंग चितवनि मंद-मंद मुसकानि री।
कदम विपट के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि चाटि पीत पट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपनि बुझावै नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री।।35।।

सवैया

अति सुंदर री ब्रजराजकुमार महा मृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाक्ष चलाइ कै लाज की गाँठन खोलत हैं।
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है।
रसखानि लखें मन बूड़ि गयौ मधि रूप के सिंधु कलोकत है।।36।।
तैं न लख्यौ जब कुंजनि तें बनिकै निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ अठ कैसो किरीट लसै लटक्यौ री।
को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ ब्रज लोग फिरै भटक्यौ री।
रूप सबै हरि वा नट को हियरे अटक्यौ अटक्यौ अटक्यो री।।37।।
नैननि बंक बिसाल के बाननि झेलि सकै अस कौन नवेली।
बेचत है हिय तीछन कोर सुमार गिरी तिय कोटिक हेली।
छौड़ै नहीं छिनहूं रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सों जनु बेली।
रौरि परी छबि की ब्रजमंडल कुंडल गंडनि कुंतल केली।।38।।
अलबेली बिलोकनि बोलनि औ अलबेलियै लोल निहारन की।
अलबेली सी डोलनि गंडनि पै छबि सों मिली कुंडल बारन की।
भटू ठाढ़ौ लख्यौ छबि कैसे कहौं रसखानि गहें द्रुम डारन की।
हिय मैं जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की।।39।।
बाँको बड़ी अँखियाँ बड़रारे कपोलनि बोलनि कौं कल बानी।
सुंदर रासि सुधानिधि सो मुख मूरति रंग सुधारस-सानी।
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डालनि है बन बीथिन मैं रसखानि मनोहर रूप-लुभानी।।40।।
दृग इतने खिंचे रहैं कानन लौं लट आनन पै लहराइ रही।
छकि छेंल छबील छटा छहराह कै कौतुक कोटि दिखाइ रही।।
झुकि झूमि झमाकनि चूमि अमी चरि चाँदनी चंद चुराइ रहा।
मन भाइ रही रसखानि महा छबि मोहन की तरसाइ रही।।41।।

लाल लसै सब के सबके पट कोटि सुगंधनि भीने।
अंगनि अंग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने।
मुकता गलमाल लसै सब ग्वार कुवार सिंगार सो कीने।
पै सिगरे ब्रज के हरि ही हरि ही कै हरैं हियरा हरि लीने।।42।।
वह घेरनि धेनु अबेर सबेरनि फेरीन लाल लकुट्टनि की।
वह तीछन चच्छु कटाछन की छबि मोरनि भौंह भृकुट्टनि की।।
वह लाल की चाल चुभी चित मैं रसखानि संगीत उघुट्टनि की।
वह पीत पटक्कनि की चटकानि लटक्कनि मोर मुकुट्टनि की।।43।।
साँझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौं मन मौं ललकै री।
ऊँची अटान चढ़ी ब्रजबाम सुलाज सनेह दुरै उझकै री।।
गोधन धूरि की धूंधरि मैं तिनकी छबि यौं रसखानि तकै री।
पावक के गिरि तें बुधि मानौ चुँवा-लपटी लपकै ललटै री।।44।।
देखिक रास महाबन को इस गोपवधू कह्यौ एक बनू पर।
देखति हौ सखि मार से गोप कुमार बने जितने ब्रज-भू पर।
तीछें निटारि लखौ रसखानि सिंगार करौ किन कोऊ कछू पर।
फेरि फिरैं अँखियाँ ठहराति हैं कारे पितंबर वारे के ऊपर।।45।।
दमकैं रवि कुंडल दामिने से धुरवा जिमि गोरज राजत है।
मुकताहल वारन गोपन के सु तौ बूँदन की छबि छाजत है।
ब्रजबाल नदी उमही रसखानि मयंकबधू दुति लाजत है।
यह आवन श्री मनभावन की बरषा जिमि आज बिराजत है।।46।।
मोर किरीट नवीन लसै मकराकृत कुंडल लोल की डोरनि।
ज्यों रसखान घने घन में दमकै बिबि दामिनि चाप के छोरनि।
मारि है जीव तो जीव बलाय बिलोक बजाय लौंनन की कोरनि।
कौन सुभाय सों आवत स्याम बजावत बैनु नचावत मौरनि।।47।।
दोउ कानन कुंडल मोरपखा सिर सोहै दुकूल नयो चटको।
मनिहार गरे सुकुमार धरे नट-भेस अरे पिय को टटको।
सुभ काछनी बैजनी पावन आवन मैन लगै झटको।
वह सुंदर को रसखानि अली जु गलीन मैं आइ अबैं अटको।।48।।
काटे लटे की लटी लकुटी दुपटी सुफटी सोउ आधे कँधा हीं।
भावते भेष सबै रसखान न जानिए क्यों अँखियाँ ललचाहीं।
तू कछू जानत या छबि कों यह कौन है साँबरिया बनमाहीं।

जोरत नैंन मरोरत भौंह निहोरत सैन अमेठत बाँही।।49।।
कैसो मनोहर बानक मोहन सोहन सुंदर काम ते आली।
जाहि बिलोकत लाज तजी कुल छूटो है नैननि की चल आली।
अधरा मुसकान तरंग लसै रसखनि सुहाइ महाछबि छाली।
कुंज गली मधि मोहन सोहन देख्यौ सखी वह रूप-रसीली50।।

दोहा

मोहन छबि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं।।51।।
या छबि पै रसखानि अब वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं रहे सु खोज।।52।।

प्रेम लीला

कवित्त

कदम करीर तरि पूछनि अधीर गोपी
आनन रुखोर गरों खरोई भरोहों सो।
चोर हो हमारो प्रेम-चौंतरा मैं हार्यौ
गराविन में निकसि भाज्यौ है करि लजैरौं सो।
ऐसे रूप ऐसो भेष हमैहूं दिखैयौ, देखि।
देखत ही रसखानि नेननि चुभेरौं सो।
मुकुट झुकोहों हास हियरा हरौहों कटि,
फेटा पिपरोहों अंगरंग साँवरौहौं सौ।।53।।

सवैया

भौंह भरी सुथरी बरुनी अति ही अधरानि रच्यौ रंग रातो।
कुंडल लोल कपोल महाछबि कुंजन तैं निकस्यौ मुसकातो।।
छूटि गयौ रसखानि लखै उर भूलि गई तन की सुधि सातो।
फूटि गयौ सिर तैं दधि भाजन टूटिगौ नैनन लाज को नातो।।54।।
जात हुती जमुना जल कौं मनमोहन घेरि लयौ मग आइ कै।
मोद भर्यौ लपटाइ लयौ पट घूँघट ढारि दयौ चित चाइ कै।

और कहा रसखानि कहौं मुख चूमत घातन बात बनाइ कै।
कैसे निभै कुल-कानि रही हिये साँवरी मूरति की छबि छाइ कै।।55।।
जा दिन ते निरख्यौ नंदनंदन कानि तजी कर बंधन टूटडौ।
चारु बिलोकिन कीनी सुमार सम्हार गई मन मोर ने लूटडौ।
सागर कों सलिला जिमि धावे न रोकी रुकै कुलको पुल टुटडौ।
मत्त भयौ मन संग फिरे रसखानि सरूप सुधारस घूटडौ।।56।।
सुधि होत बिदा नर नारिन की दुति दीहि परे बहियाँ पर की।
रसखान बिलोकत गुंज छरानि तजैं कुल कानि दुहूँ घर की।
सहरात हियौ फहरात हवाँ चितबैं कहरानि पितंबर की।
यह कौन खरौ इतरात गहै बलि की बहियाँ छहियाँ बर की।।57।।
ए सजनी मनमोहन नागर आगर दौर करी मन माहीं।
सास के त्रास उसास न आवत कैसे सखी ब्रजवास बसाहीं।
माखी भई मधु की तरुनी बरनीन के बान बिंधीं कित जाहीं।
बीथिन डोलति हैं रसखानि रहैं निज मंदिर में पल नाहीं।।58।।
सखि गोधन गावत हो इक ग्वार लख्यौ वहि डार गहें बट की।
अलकावलि राजति भाल बिसाल लसै बनमाल हिये टटकी।
जब तें वह तानि लगी रसखानि निवारै को या मग हौं भटकी।
लटकी लट मों दृग-मीननि सों बनसी जियवा नट की अटकी।।59।।
गाइ सुहाइ न या पैं कहूँ न कहूँ, यह मेरी गरी निकर्यौ है।
धीरसमीर कलिंदी के तीर खर्यौ रटै आजु री डीठि पर्यौ है।
जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढरि राँग सो आँग ढर्यौ है।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत टेरत आनि पर्यौ है।।60।।
खंजन मीन सरोजन को मृग को मद गंजन दीरघ नैना।
कंजन ते निकस्यौ मुसकात सु पान पर्यौ मुख अमृत बैना।।
जाइ रटे मन प्रान बिलोचन कानन में रचि मानत चैना।
रसखानि कर्यौ घर मो हिय में निसिवासर एक पलौ निकसै ना।।61।।

दोहा

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटाँक नहिं देत।
यहै कहा पाटी पढ़ी, दल को पीछो लेत।।62।।
मो मन मानिक ले गयौ, चिते चोर नंदनंद।

अब बेमन मैं क्या करूँ, परी फेर के फंद।।63।।
नैन दलालनि चौहटें, मन मानिक पिय हाथ।
रसखाँ ढोल बजाइके, बेच्यौ हिय जिय साथ।।64।।

सोरठा

प्रीतम नंदकिशोर, जा दिन तें नेननि लग्यौ।
मन पावन चित्त चोर, पलक ओट नहिं सहि सकौं।।65।।

बंक बिलोचन

सवैया

मैन मनोहर नैन बड़े सखि सैननि ही मनु मेरो हर्यौ है।
गेह को काज तज्यौ रसखानि हिये ब्रजराजकुमार अर्यौ है।।
आसन-बासन सास के आसन पाने न सासन रंग पर्यौ है।
नैननि बंक बिसाल की जोहनि मत्त महा मन मत कर्यौ है।।66।।
भटू सुंदर स्याम सिरोमनि मोहन जोहन मैं चित्त चोरत है।
अबलोकन बंक बिलोचन मैं ब्रजबालन के दृग जोरत है।।
रसखानि महावत रूप सलोने को मारग तें मन मोरत है।
ग्रह काज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज को तोरत है।।67।।
आली लाल घन सों अति सुंदर तैसो लसे पियरो उपरैना।
गंडनि पै छलकै छवि कुंडल मंडित कुंतल रूप की सैना।
दीरघ बंक बिलोकनि की अबलोकनि चोरति चित्त को चैना।
मो रसखानि रटौ चित्त री मुसकाइ कहे अधरामृत बैना।।68।।
वह नंद को साँवरो छैल अली अब तौ अति ही इतरान लग्यौ।
नित घाटन बाटन कुंजन मैं मोहिं देखत ही नियरान लग्यौ।
रसखानि बखान कहा करियै तकि सैननि सों मुसकान लग्यौ।
तिरछी बरखी सम मारत है दृग-बान कमान मुकान लग्यौ।।69।।
मोहन रूप छकी बन डोलति घूमति री तजि लाज बिचारें।
बंक बिलोकनि नैन बिसाल सु दंपति कोर कटाछन मारैं।।
रंगभरी मुख की मुसकान लखे सखी कौन जु देह सम्हारे।
ज्यौं अरबिंद हिमंत-करी झकझोरि कैं तोरि मरोरि कैं डारैं।।70।।

आज गई ब्रजराज के मंदिर स्याम बिलोक्यौ री माई।
सोइ उठडौ पलिका कल कंचन बैठडो महा मनहार कन्हाई।।
ए सजनी मुसकान लख्यौ रसखानि बिलोकनि बंक सुहाई।
मैं तब ते कुलकानि तजौ सुबजी ब्रजमंडल मांह दुहाई।।71।।
मोहन के मन की सब जानति जोहन के मोहि मग लियौ मन।
मोहन सुंदर आनन चंद तें कुंजनि देख्यौ में स्यामघ सिरोमन।
ता दिन तें मेरे नैननि लाज तजी कुलकानि की डोलत हौं बन।
कैसी करौं रसखानि लगी जक री पकरी पिय के हित को पन।।72।।
लोक की लाज तज्यौ तबहिं जब देख्यो सखी ब्रजचंद सलौनो।
खंजन मीन सरोजन की छबि गंजन नैन लला दिन होनो।
हेर सम्हारि सकै रसखानि सो कौन तिया वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सौं जोहन को सर बेधत प्राननि नंद को छोनो।।73।।

मुस्कान माधुरी

सवैया

वा मुख की मुसकान भटू अँखियानि तें नेकु टरै नहिं टारी।
जौ पलकैं पल लागति हैं पल ही पल माँझ पुकारैं पुकारी।
दूसरी ओर तें नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ बजमारी।
प्रेम की बानि की जोग कलानि गही रसखानि बिचार बिचारी।।74।।
कातिग क्वार के प्रात सरोज किते बिकसात निहारे।
डीठि परे रतनागर के दरके बहु दामिड़ बिंब बिचारे।।
लाल सु जीव जिते रसखानि दरके गीत तोलनि मोलनि भारे।
राधिका श्रीमुरलीधर की मधुरी मुसकानि के ऊपर बारे।।75।।
बंक बिलोचन हैं दुख-मोचन दीरघ रोचन रंग भरे हैं।
घमत बारुनी पान कियें जिमि झूमत आनन रूप ढरै हैं।
गंडनि पै झलकै छबि कुंडल नागरि-नैन बिलोकि भरे हैं।
बालनि के रसखानि हरे मन ईषद हास के पानि परे हैं।।76।।

कवित्त

अब ही खरिक गई, गाइ के दुहाइबे कौं,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनी यौ पानि की।

कोऊ कहै छरी कोऊ मौन परी कोऊ,
कोऊ कहै भरी गति हरी अँखियानि की।।
सास व्रत टानै नंद बोलत सयाने धाइ
दौरि-दौरि मानै-जानै खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसैं मुरझानि पहिचानि कहूँ,
देखी मुसकानि वा अहीर रसखानि की।।77।।

सवैया

मैन-मनोहर बैन बजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यौं दमकै चमकै झमकैं दुति दामिनि की मनौ स्याम घटा है।
ए सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढ़ि फेरत लाल बटा है।
रसखानि महा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुलकानि कटा है।।78।।
जा दिन तें मुसकानि चुभी चित ता दिन तें निकसी न निकारी।
कुंडल लोल कपोल महा छबि कुंजन तें निकस्यो सुखकारी।।
हौ सखि आवत ही दगरें पग पैंड़ तजी रिझई बनवारी।
रसखानि परी मुसकानि के पाननि कौन गनै कुलकानि विचारी।।79।।
काननि दै अँगुरी रहिबो जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै।
मोहनी तानन सों रसखानि अटा चढ़ि गोधन गैहै तौ गैहै।।
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितौ समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहे न जैहे न जैहे।।80।।
आजु सखी नंद-नंदन की तकि ठाढ़ौ हों कुंजन की परछाहीं।
नैन बिसाल की जोहन को सब भेदि गयौ हियरा जिन माहीं।
घाइल धूमि सुमार गिरी रसखानि सम्हारति अँगनि जाहीं।
एते पै वा मुसकानि की डौंड़ी बजी ब्रज मैं अबला कित जाहीं।।81।।

दोहा

ए सजनी लोनो लला, लखौ नंद के देह।
चितयौ मृदु मुस्काइ कै, हरी सबै सुधि देह।।82।।
कृष्ण सौंदर्य

दोहा

जोहन नंदकुमार कों, गई नंद के गेह।
मोहिं देखि मुसकाइ कै, बरस्यौ मेह सनेह।।83।।

सवैया

मोरपखा सिर कानन कुंडल कुंतल सों छबि गंडनि छाई।
बंक बिसाल रसाल बिलोचन हैं दुखमौचन मोहन माई।
आली नवीन यह घन सो तन पीट घट ज्यौं पठा बनि आई।
हौं रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगौरी सी लाई।।84।।
जा दिन तें वह नंद को छोहरा या बन धेनु चराइ गयौ है।
मोहनी तानन्नि गोधन गावत बेन बजाइ रिझाइ गयौ है।
बा दिन सों कछु टोना सो कै रसखानि हिये मैं समाइ गयौ है।
कोऊ न काहू की कानि करै सिगरौ ब्रज वीर! बिकाइ गयौ है।।85।।
आयौ हुतौ नियरैं रसखानि कहा कहौं तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब बारति प्राननि लेति बलैया।
कोऊ न काहु की कानि करैं कछु चेटक सो जु कियौ जदुरैंया।
गाइ गौ तान जमाइ गौ नेह रिझाइ गौ प्रान चराइ गौ गैया।।86।।
कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुनिया रंग-भीनी।
तान सुनीं जिनहीं-तिनहीं तबहीं तित साज बिदा कर दीनी।
घूमैं घरी नंद के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या ब्रज-मंडल में रसखानि सु कौन भटू जू लटू नहिं कीनी।।87।।
बाँकी धरै कलगी सिर 'ऊपर बाँसुरी-तान कटै रस बीर के।
कुंडल कान लसैं रसखानि विलोकन तीर अनंग तुनीर के।
डारि ठगौरी गयौ चित चोरि लिए है सबैं सुख सोखि सरीर के।
जात चलावन मो अबला यह कौन कला है भला वे अहीर के।।88।।
कौन की नागरि रूप की आगरि जाति लिए संग कौन की बेटी।
जाको लसै मुख चंद-समान सु कोमल अँगनि रूप-लपेटी।
लाल रही चुप लागि है डीठि सु जाके कहूँ उर बात न मेटी।
टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख-पेटी।।89।।
मकराकृत कुंडल गुंज की माल के लाल लसै पग पाँवरिया।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयौ भावती भाँवरिया।

रसखानि बिलोकत ही सिगरी भई बावरिया ब्रज-डाँवरिया।
सजती ईहिं गोकुल मैं विष सो बगरायौ हे नंद की साँवरिया।।90।।

रूप प्रभाव

सवैया

नवरंग अनंग भरी छवि सौं वह मूरति आँखि गड़ी ही रहैं
बतिया मन की मन ही मैं रहे घतिया उर बीच अड़ी ही रहैं।
तबहूँ रसखानि सुजान अली नलिनी दल बूँद पड़ी ही रहै।
जिय की नहिं जानत हौं सजनी रजनी अँसुवान लड़ी ही रहै।।91।।
मैन मनोहर ही दुख दंदन है सुख कंदन नंद को नंदा।
बंक बिलोचन की अवलोकनि है दुख योजन प्रेम को फंदा।
जा को लखैं मुख रूप अनुपम होत पराजय कोटिक चंदा।
हौं रसखानि बिकाइ गई उन मोल लई सजनी सुख चंदा।।92।।
सोहत है चँदवा सिर मोर के तैसिय सुंदर पाग कसी है।
तैसिय गोरज भाल बिराजति जैसी हियें बनमाल लसी है।
रसखानि बिलोकत बौरी भई दृगमूँदि कै ग्वालि पुकारि हँसी है।
खोलि री नैननि, खोलौं कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है।।93।।
सुनि री! पिय मोहन की बतियाँ अति दीठ भयौ नहिं कानि करै।
निसि बासरु औसर देत नहीं छिनहीं छिन द्वार ही आनि अरै।
निकसी मति नागरि डौंड़ी बजी ब्रज मंडल मैं यह कौन भरै।
अब रूप की रौर परी रसखानि रहै तिय कौऊ न माँझ धरै।।94।।
रंग भर्यौ मुसकान लला निकस्यौ कल कुंजन ते सुखदाई।
मैं तबही निकसी घर ते तनि नैन बिसाल की चोट चलाई।।
घूमि गिरी रसखानि तब हरिनी जिमि बान लगैं गिर जाई।
टूटि गयौ घर को सब बंधन छूटिगौ आरज लाज बड़ाई।।95।।
खंजन नैन फँदे पिंजरा छबि नाहिं रहैं थिर कैसे हुँ भाई।
छूटि गई कुलकानि सखी रसखानि लखी मुसकानि सुहाई।।
चित्र कढ़े से रहे मेरे नैन न बैन कढ़े मुख दीनी दुहाई।
कैसी करौं कित जाऊँ अली सब बोलि उठैं यह बावरी आई।।96।।

कुंज लीला

सवैया

कुंजगली मैं अली निकसी तहाँ साँकरे ढोटा कियौ भटभेरो।
माई री वा मुख की मुसकान गयौ मन बूढ़ि फिरै नहिं फेरो।।
डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डार्यौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसा करौं अब क्यों निकसों रसखानि पर्यौ तन रूप को घेरो।।97।।

सोरठा

देख्यौ रूप अपार, मोहन सुंदर स्याम को।
वह ब्रजराज कुमार, हिय जिय नैननि में बस्यौ।।98।।
नटखट कृष्ण

कवित

अंत ते न आयौ याही गाँवरे को जायौ,
माई बाप रे जिवायौ प्याइ दूध बारे बारे को।
सोई रसखानि पहिचानि कानि छांड़ि चाहे,
लोचन नचावत नचया द्वारे द्वारे को।
मैया की सौं सोच कछू मटकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर चीर डारे को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी माँझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को।।99।।

सवैया

एक ते एक लौं कानन में रहें ढीठ सखा सब लीने कन्हाई।
आवत ही हौं कहाँ लौं कहीं कोउ कैसे सहै अति की अधिकाई।।
खायौ दही मेरो भाजन फोर्यौ न छाड़त चीर दिवाएँ दुहाई।
सोंह जसोमति की रसखानि ते भागें मरु करि छूटन पाई।।100।।
आज महूँ दधि बेचन जात ही मोहन रोकि लियौ मग आयौ।
माँगत दान में आन लियौ सु कियो निलजी रस जोवन खायौ।।
काह कहूँ सिगरी री बिथा रसखानि लियौ हँसि के मुस्कायौ।

पाले परी मैं अकेली ललो, लला लाज लियो सु कियौ मनभायौ।।101।
पहलें दधि लैं गई गोकुल में चख चारि भए नटनागर पै।
रसखानि करी उनि मैनमई कहैं दान दे दान खरे अर पै।।
नख तें सिख नील निचोल पलेटे सखी सम भाँति कँपे र पै।।
मनौ दामिनि सावन के घन में निकसे नहीं भीतर ही तरपै।।102।।
दानी नए भए माँगत दान सुने जु है कंस तौ बाँधे न जैहौ।
रोकत हौं बन में रसखानि पसारत हाथ महा दुख पैहो।
टूटें छरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै पुनि रेहौ।
जै है जो भूषन काहू तिया को तो मौल छलाके लला न बिकैहौ।।103।।
छीर जौ चाहत चीर गहैं एजू लेउ न केतिक छीर अचौहौ।
चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहौ।
जानति हौं जिय की रसखानि सु काहे कौ एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्हजू नेकु न पैहौ।।104।।
लंगर छैलहि गोकुल मैं मग रोकत संग सखा ढिंग तै हैं।
जाहि न ताहि दिखावत आँखि सु कौन गई अब तोसों करे हैं।
हाँसीं में हार हटडौ रसखानि जु जौं कहूँ नेकु तगा टुटि जै हैं।
एकहि मोती के मोल ललो सिगरे ब्रज हाटहि हाट बिकै हैं।।105।।
काहु को माखन चाखि गयौ अरु काहू को दूध दही ढरकायौ।
काहू को चीर लै रूप चढ़यौ अरु काहू को गुंजछरा छहरायौ।
मानै नहीं बरजें रसखानि सु जानियै राज इन्हैं घर आयौ।
आवरी बूझैं जसोमति सों यह छोहरा जायौ कि मेव मंगायौ।।106।।

कवित्त

दूध दुह्यौ सीरो पर्यौ तातो न जमायौ कर्यौ,
जामन दयौ सो धर्यौ, धर्यौई खटाइगौ।
आन हाथ आन पाइ सबही के तब ही तें,
जब ही तें रसखानि ताननि सुनाइगौ।
ज्यौं ही नर त्यौंहों नारी तैसीयै तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रिज बिललाइगौ।
जानियै न माली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइ गौ कि विष बगराइगौ।।107।।

जल की न घट भरैं मग की न पग धरैं,
घर की न कछु करैं बैठी भरैं साँसुरी।
एकै सुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आग आँसु री।
कहै रसखानि सो सबै ब्रज बनिता वधि,
बधिक कहाय हाय भई कुल हाँसु री।।
करियै उपायै बाँस डारियै कटाय,
नाहिं उपजैगौ बाँस नाहिं बाजे फेरि बाँसुरी।।108।।

सवैया

चंद सों आनन मैन-मनोहर बैन मनोहर मोहत हौं मन
बंक बिलोकनि लोट भई रसखानि हियो हित दाहत हौं तन।
मैं तब तैं कुलकानि की मैंड़ नखी जु सखी अब डोलत हों बन।
बेनु बजावत आवत है नित मेरी गली ब्रजराज को मोहन।।109।।
बाँकी बिलोकनि रंगभरी रसखानि खरी मुसकानि सुहाई।
बोलत बोल अमीनिधि चैन महारस-ऐन सुनै सुखदाई।।
सजनी पुर-बीथिन मैं पिय-गोहन लागी फिरैं जित ही तित धाई।
बाँसुरी टेरि सुनाइ अली अपनाइ लई ब्रजराज कन्हाई।।110।।
डोरि लियौ मन मोरि लियो चित जोह लियौ हित तोरि कै कानन।
कुंजनि तें निकस्यौ सजनी मुसकाइ कह्यो वह सुंदर आनन।।
हों रसखानि भई रसमत्त सखी सुनि के कल बाँसुरी कानन।
मत्त भई बन बीथिन डोलति मानति काहू की नेकु न आनन।।111।।
मेरो सुभाव चितैबे को माइ री लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन तें मोहि लागी ठगौरी सी लोग कहैं कोई बाबरी आई।।
यौं रसखानि घिर्यौ सिगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियराई।
जौं कोउ चाहै भलौ अपने तौ सनेह न काहू सों कीजियौ माई।।112।।
मोहन की मुरली सुनिकै वह बौरि ह्वै आनि अटा चढ़ि झाँकी।
गोप बड़ेन की डीठि बचाई कै डीठि सों डीठिं मिली दुहुं झांकी।
देखत मोल भयौ अंखियान को को करै लाज कुटुंब पिता की।
कैसे छुटाइै छुटै अंटकी रसखानि दुहुं की बिलौकनि बाँकी।।113।।
बंसी बजावत आनि कढ़ौ सो गली मैं अली! कछु टोना सौ डारे।

हेरि चिते, तिरछी करि दृष्टि चलौ गयौ मोहन मूठि सी मारे।।
ताही घरी सों परी धरी सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहूं वारे।
राधिका जी है तो जी हैं सबे नतो पीहैं हलाहल नंद के द्वारे।।114।।
काल काननि कुंडल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरलीकर मैं अधरा मुसकानि-तरंग महा छबि छाजति है।।
रसखानि लखें तन पीत पटा सत दामिनि सी दुति लाजति है।
वहि बाँसुरी की धुनि कान परे कुलकानि हियो तजि भाजति है।।115।।
काल्हि भटू मुरली-धुनि में रसखानि लियौ कहुं नाम हमारौ।
ता छिन ते भई बैरिनि सास कितौ कियौ झाँकन देति न द्वारौ।।
होत चवाव बलाई सों आलो जो भरि शाँखिन भेटिये प्यारौ।
बाट परी अब री ठिठक्यो हियरे अटक्यौ पियरे पटवारौ।।116।।
आज भटू इक गोपबधू भई बावरी नेकु न अंग सम्हारै।
माई सु धाइ कै टौना सो ढूँढ़ति सास सयानी-सवानी पुकारै।
यौं रसखानि घिरौ सिगरौ ब्रज आन को आन उपाय बिचारै।
कोउ न कान्हर के कर ते वहि बैरिनि बाँसरिया गाहि जारै।।117।।
कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखि! हमको चहिहै।
निसद्यौस रहे संग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यौं सहिहै।।
जिन मोहि लियौ मन मोहन को रसखानि सदा हमको दहिहै।
मिलि आऔ सबै सखि! भागि चलै अब तौ ब्रज में बसुरी रहिहै।।118।।
ब्रज की बनिता सब घेरि कहैं, तेरो ढारो बिगारो कहा कस री।
अरी तू हमको जम काल भई नैक कान्ह इही तौ कहा रस री।।
रसखानि भली विधि आनि बनी बसिबो नहीं देत दिसा दस री।
हम तो ब्रज को बसिबोई तजौ बस री ब्रज बेरिन तू बस री।।119।।
बजी है बजी रसखानि बजी सुनिकै अब गोपकुमारी न जीहै।
न जीहै कोऊ जो कदाचित कामिनी कान मैं बाकी जु तान कु पी है।।
कुपी है विदेस संदेस न पावति मेरी डब देह को मौन सजी है।
सजी है तै मेरो कहा बस है सुतौ बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी है।।120।।
मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माला गरें पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी।।
भाव तो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहें सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरीं अधरा न धरौंगी।।121।

कालिय दमन

कवित्त

आपनो सो ढोटा हम सब ही को जानत हैं,
दोऊ प्रानी सब ही के काज नित धावहीं।
ते तौ रसखानि जब दूर तें तमासो देखैं,
तरनितनूजा के निकट नहिं आवहीं
आन दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जेऊ आए ते ये लोचन रावहीं।
कहा कहौं आली खाली देत सग ठाली पर,
मेरे बनमाली कों न काली तें छुरावहीं।।122।।

सवैया

लोग कहैं ब्रज के सिगरे रसखानि अनंदित नंद जसोमति जू पर।
छोहरा आजु नयो जनम्यौ तुम सो कोऊ भाग भरयौ नहिं भू पर।
वारि कै दाम सँवार करौ अपने अपचाल कुचाल ललू पर।
नाचत रावरो लाल गुजाल सो काल सों व्याल-कपाल के ऊपर।।123।।

चीर हरण

सवैया

एक समै जमुना-जल मैं सब मज्जन हेत धसीं ब्रज-गोरी।
त्यौं रसखानि गयौ मनमोहन लै कर चीर कदंब की छोरी।।
न्हाइ जबै निकसी बनिता चहुँ ओर चितै चित रोष करो री।
हार हियें भरि भावन सों पट दीने लला बचनामृत धोरी।।124।।

प्रेमासक्ति

सवैया

प्रान वही जू रहैं रिझि वा पर रूप वही जिहि वाहि रिझायौ।
सीस वही जिन वे परसे पर अंक वही जिन वा परसायौ।।

दूध वही जु दुहायौ री वाही दही सु सही जु वही ढरकायौ। =
और कहाँ लौं कहौं रसखानि री भाव वही जु वही मन भायौ।।125।।
देखन कौं सखी नैन भए न सबै बन आवत गाइन पाछैं।
कान भए प्रति रोम नहीं सुनिबे कौं अमीनिधि बोलनि आछैं।।
ए सजनी न सम्हारि भरै वह बाँकी बिलोकनि कोर कटाछै।
भूमि भयौ न हियो मेरी आली जहाँ हरि खेलत काछनी काछै।।126।।
मोरपखा मुरली बनमाल लखें हिय कों हियरा उमह्यौ री,
ता दिन ते इन बैरिनि को कहि कौन न बोल कुबोल सह्यौ री।।
तौ रसखानि सनेह लग्यौ कोउ एक कह्यौ कोउ लाख कह्यौ री।।
और तो रंग रह्यौ न रह्यौ इक रंग रँगी सोह रंग रह्यौरी।।127।।
बन बाग तड़ागनि कुंजगली अँखियाँ मुख पाइहैं देखि दई।
अब गोकुल माँझ बिलोकियैगी बह गोप सभाग-सुभाय रई।।
मिलिहै हँसि गाइ कबै रसखानि कबै ब्रजबालनि प्रेम भई।
वह नील निचोल के घूँघट की छबि देखबी देखन लाज लई।।128।।
काल्हि पर्यौ मुरली-धन मैं रसखानि जू कानन नाम हमारो।
ता दिन तें नहिं धीर रखौ जग जानि लयौ अति कीनौ पँवारो।।
गाँवन गाँवन मैं अब तौ बदनाम भई सब सों कै किनारो।
तौ सजनी फिरि फेरि कहौं पिय मेरो वही जग ठोंकि नगारो।।129।।
देखि हौं आँखिन सों पिय कों अरु कानन सों उन बैन को प्यारी।
बाँके अनंगनि रंगनि की सुरभीनी सुगंधनि नाक मैं डारी।
त्यौं रसखानि हिये मैं धरौं वहि साँवरी मूरति मैन उजारी।
गाँव भरौ कोउ नाँव धरौं पुनि साँवरी हों बनिहों सुकुमारी।।130।।
तुम चाहो सो कहौ हम तो नंदवारै के संग ठई सो ठई।
तुम ही कुलबीने प्रवीने सबै हम ही कुछ छाँड़ि गई सो गई।
रसखान यों प्रीत की रीत नई सुकलंक की मोटैं लई सो लई।
यह गाँव के बासी हँसे सो हँसे हम स्याम की दासी भई सो भई।।131।।
मोर पखा धरे चारिक चारु बिराजत कोटि अमेठनि फैंटो।
गुंज छरा रसखान बिसाल अनंग लजावत अंग करैटो।
ऊँचे अटा चढ़ि एड़ी ऊँचाइ हितौ हुलसाय कै हौंस लपेटो।
हौं कब के लखि हौं भरि आँखिन आवत गोधन धूरि धूरैटो।।132।।
कुंजनि कुंजनि गुंज के पुंजनि मंजु लतानि सौं माल बनैबो।

मालती मल्लिका कुंद सौं गूंदि हरा हरि के हियरा पहिरैबौ।
आली कबै इन भावने भाइन आपुन रीझि कै प्यारे रिझैबो।
माइ झकै हरि हाँकरिबो रसखानि तकै फिरि के मुसकेबो।।133।।
सब धीरज क्यों न धरौं सजनी पिय तो तुम सों अनुरागइगौ।
जब जोग संजोग को आन बनै तब जोग विजोग को मानेइगौ।
निसचौ निरधार धरौ जिय में रसखान सबै रस पावेइगौ।
जिनके मन सो मन लागि रहै तिनके तन सौं तन लागेइगो।।134।।
उनहीं के सनेहन सानी रहैं उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं।
उनहीं की सुनै न औ बैन त्यौं सैंन सों चैन अनेकन ठानी रहैं।
उनहीं संग डोलन मैं रसखान सबै सुखसिंध अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी आँखि अंसुधानी रहैं।।135।।

प्रेम बंधन

सवैया

चंदन खोर पै चित्त लगाय कै कुंजन तें निकस्यौ मुसकातो।
राजत है बनमाल गले अरु मोरपखा सिर पै फहरातो।
मैं जब तें रसखान बिलोकति हो कजु और न मोहि सुहातो।
प्रीति की रीति में लाज कहा सखि है सब सों बड़ नेह को नातो।।136।।
कौन को लाल सलोनो सखी वह जाकी बड़ी अँखियाँ अनियारी।
जोहन बंक बिसाल के बाननि बेधत हैं घट तीछन भारी।
रसखानि सम्हारि परै नहिं चोट सु कोटि उपाय करें सुखकारी।
भाल लिख्यौ विधि हेत को बंधन खोलि सकै ऐसो को हितकारी।।137।।

नेत्रोपालंभ

सवैया

आली पग रंगे जे रंग साँवरे मो पै न आवत लालची नैना।
धावत हैं उतहीं जित मोहन रोके रुके नहिं घूँघट रैना।
काननि कौं कल नाहिं परै सखी प्रेम सों भीजे सुनैं बिन नैना।
रसखानि भई मधु की मछियाँ अब नेह को बंधन क्यों हूँ छुटे ना।।138।

श्री वृसभान की छान धुजा अटकी लरकान तें आन लई री।
वा रसखान के पानि की जानि छुड़ावति राधिका प्रेममई री।
जीवन मुरि सी नेज लिए इनहूँ चितयौ ऊनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही सुरझानि गुड़ी उरझाय दई री।।139।।
आब सबै ब्रज गोप लली ठिठकौं ह्वै गली जमुना-जल न्हाने।
औचक आइ मिले रसखानि बजावत बेनु सुनावत ताने।
हा हा करी सिसकीं सिगरी मति मैन हरी हियरा हुलसाने।
चूमें दिवानी अमानी चकोर सों ओर सों दोऊ चलैं दृग बाने।।140।।

कवित्त

छूटयौ गृह काज लोक लाज मन मोहिनी को,
भूल्यौ मन मोहन को मुरली बजाइबौ।
देखो रसखान दिन द्वै में बात फैलि जै है,
सजनी कहाँ लौं चंद हाथन दुराइबौ।
कालि ही कालिंदी कूल चितयौ अचानक ही,
दोउन की दोऊ ओर मुरि मुसकाइबौ।
दोऊ परै पैंया दोऊ लेत हैं बलैया, इन्हें
भूल गई गैया उन्हें गागर उठाइबौ।।141।।

सवैया

मंजु मनोहर मूरि लखैं तबहीं सबहीं पतहीं तज दीनी।
प्राण पखेरू परे तलफें वह रूप के जाल मैं आस-अधीनी।
आँख सों आँख लड़ी जबहीं तब सों ये रहैं अँसुधा रंग भीनी।
या रसखानि अधीन भई सब गोप-लली तजि लाज नवीनी।।142।।
नंद को नंदन है दुखकंदन प्रेम के फंदन बाँधि लई हों।
एक दिन ब्रजराज के मंदिर मेरी अली इक बार गई हौं।
हेर्यौ लला लचकाइ कै मोतन जोहन की चकडोर भई हौं।
दौरी फिरौं दृग डोरन मैं हिय मैं अनुराग की बेलि बई हौं।।143।।
तीरथ भीर में भूलि परी अली छूट गइ नेकु धाय की बाँही।
हौं भटकी-भटकी निकसी सु कुटुंब जसोमति की जिहिं धाँही।
देखत ही रसखान मनौ सु लग्यौ ही रह्यौ कब कों हियराँही।

भाँति अनेकन भूली हुती उहि द्यौस कौ भूलनि भूलत नाँहीं।।144।।
समुझे न कछू अजहूँ हरि सो अज नैन नचाइ नचाइ हँसै।
नित सास की सीखै उन्मात बनै दिन ही दिन माइ की कांति नसै।
चहूँ ओर बबा की सौ, सोर सुनैं मन मेतेऊ आवति री सकसै।
पै कहा करौं या रसखानि बिलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै।।145।।
मारग रोकि रह्यौ रसखानि के कान परी झनकार नई है।
लोक चितै चित दै चितए नख तैं मन माहिं निहाल भई है।
ठोढ़ी उठाई चितै मुसकाई मिलाइ कै नैन लगाई लई है।
जो बिछिया बजनी सजनी हम मोल लई पुनि बेचि दई है।।146।।
जमुना-तट बीर गई जब तें तब तें जग के मन माँझ तहौं।
ब्रज मोहन गोहन लागि भटू हौं लूट भई लूट सी लाख लहौं।
रसखान लला ललचाइ रहे गति आपनी हौं कहि कासों कहौं।
जिय आवत यों अबतों सब भाँति निसंक ह्वै अंक लगाय रहौं।।147।।
औचक दृष्टि परे कहु कान्ह जू तासो कहै ननदी अनुरागी।
सो सुनि सास रही मुख मोहिं जिठानी फिरै जिय मैं रिस पागी।
नीके निहारि कै देखे न आँखिन हौं कबहूँ भरि नैन न जागी।
मो पछितावो यहै जु सखी कि कलंक लग्यौ पर अंक न लागी।।148।।
सास की सासनहीं चलिबो चलियै निसिद्यौस चलावे जिही ढंग।
आली चबाव लुगाइन के डर जाति नहीं न नदी ननदी-संग।
भावती औ अनभावती भीर मैं छवै न गयौ कबहूँ अंग सों अंग।
घैरु करैं घरुहाई सबै रसखानि सौं मो सौं कहा कहा न भयो रंग।।149।।
घर ही घर घैरु घनौ घरिहि घरिहाइनि आगें न साँस भरौं।
लखि मेरियै ओर रिसाहिं सबैं सतराहिं जौं सौं हैं अनेक करौं।
रसखानि तो काज सबैं ब्रज तौ मेरौ बेरी भयौ कहि कासों लरौं।
बिनु देखे न क्यों हूँ निमेषै लगैं तेरे लेखें न हू या परेखें मरौं।।150।।

दोहा

स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यौ रसखानि।
भई दिवानी पानि करि, प्रेम-मद्य मन मानि।।151।।

सवैया

कोउ रिझावन कौ रसखानि कहै मुकतानि सौं माँग भरौंगी।
कोऊ कहै गहनो अंग-अंग दुकूल सुगंध पर्यौं पहिरौंगी।
तूँ न कहै न कहैं तौं कहौं हौं कहूँ न कहाँ तेरे पाँय परौंगी।
देखहि तूँ यह फूल की माल जसोमति-लाल-निहाल करौंगी।।152।।
प्यारी पै जाइ कितौ परि पाइ पची समझाइ सखी की सौं बेना।
बारक नंदकिशोर की ओर कह्यौ दृग छोर की कोर करै ना।
ह्वै निकस्यौ रसखान कहू उत डीठ पर्यौ पियरौं उपरै ना।
जीव सो पाय गई पचिवाय कियौ रुचि नेह गए लचि नैंना।।153।।
सखियाँ मनुहारि कै हारि रही भृकुटी को न छोर लली नचयौ।
चहुवा घनघोर नयौ उनयौ नभ नायक ओर चित्ते चितयौ।
बिकि आप गई हिय मोल लियौ रसखान हितू न हियों रिझयौ।
सिगरो दु:ख तीछन कोटि कटाछन काटि कै सौतिन बाँटि दियौ।।154।।
खेलै अलीजन के गन मैं उत प्रीतम प्यारे सों नेह नवीनो।
बैननि बोघ करै इत कौं उत सैननि मोहन को मन लीनो।
नैनति की चलिबी कछु जानि सखी रसखानि चितैवे कौं कीनो।
जा लखि पाइ जंभाइ गई चुटकी चटकाइ विदा करि दीनो।।155।।
मोहन के मन भाइ गयौ इक भाइ सों ग्वालिनै गोधन बायो।
ताकों लग्यौ चट, चौहट सों दुरि औचक गात सों गात छबायौ।
रसखानि लही इनि चातुरता चुपचाप रही जब लों घर आयो।
नैन नचाई चित्तै मुसकाइ सू ओठ ह्वै जाइ अँगूठा दिखायौ।।156।।
कान परे मृदु बैन मरु करि मौन रहौ पल आधिक साधे।
नंद बबा घर कों अकुलाय गई दधि लैं बिरहानल दाधे।
पाय दुहूननि प्राननि प्रान सों लाज दबै चितये दृग आने।
नैननि ही रसखान सनेह सही कियो लेउ दही कहि राधे।।157।।
केसरिया पट, केसरि खौर, बनौ गर गुंज को हार ढरारो।
को हौ जू आपनी या छवि सों जुखरे अँगना प्रति डीठि न डारो।
आनि बिकाऊ से होई रहे रसखानि कहै तुम्ह रौकि दुवारो।
'है तो बिकाऊँ जौ लेत बनैं हँसबोल निहारो है मोल हमारो।।158।।
एक समय इक ग्वालिनि कों ब्रजजीवन खेलत दृष्टि पर्यौ है।
बाल प्रबीन सकै करि कै सरकाइ के मौरन चीर धर्यौ है।

यौं रस ही रस ही रसखानि सखी अपनीमन भायो कर्यौ है।
नंद के लाड़िले ढाँकि दै सीस इहा हमरो बरु हाथ भर्यौ है।।159।।
मैं रसखान की खेलनि जीति के मालती माल उतार लई री।
मैरीये जानि कै सूधि सबै चुप है रही काहु न खई री।
भावते स्वेद की, बास सखी ननदी पहिचानि प्रचंड भई री।
मैं लखिबो के अँखियाँ मुसकाय लचाय नचाइ दई री।।160।।
ब्रषभान के गेह दिवारी के द्यौस अहीर अहीरनि भीर भई।
जितही तितही धुनि गोधन की सब ही ब्रज ह्वै रह्यौ राग मई।।
रसखान तबै हरि राधिका यों कछु सैननि ही रस बेल बई।
उहि अंजन आँखिन आँज्यौ भटू इत कुंकुम आड़ लिलार दई।।161।।
बात सुनी न कहूँ हरि की न कहूँ हरि सों मुख बोल हँसी है।
काल्हि ही गोरस बेचन कौं निकसी ब्रजवासिनि बीच लसी है।।
आजु ही बारक 'लेहु दही' कहि कै कछु नैनन में बिहसी है।
बैरिनि वाहि भई मुसकानि जु वा रसखानि के प्रान बसी है।।162।।
ग्वालिन ह्वैक भुजान गहैं रसखानि कौं लाई जसोमति पाहैं।
लूटत हैं कहैं ये बन मैं मन मैं कहैं ये सुख लूट कहाँ हैं।।
अंग ही अंग ज्यौं ज्यौं ही लगैं त्यौं त्यौं ही न अंग ही अंग समा हैं।
वे पछलैं उलटै पग एक तौ वे पछलैं उलटै पग जाहैं।।163।।
दूर तें आई दुरे हीं दिखाइ अटा चढ़ि जाइ गह्यौ तहाँ आरौ।
चित कहूँ चितवै कितहूँ, चित्त और सौं चाहि करै चखवारौ।
रसखानि कहै यहि बीच अचानक जाइ सिढ़ी चढ़ि खास पुकारो।
रूखि गई सुकुवार हियो हनि सैन पटू कह्यौ स्याम सिधारौ।।164।।

दोहा

बंक बिलोकनि हँसनि मुरि, मधुर बैन रसखानि।
मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिये रसखानि।।165।।

प्रेम-वेदन

सवैया

वह गोधन गावत गोधन मैं जब तें इहि मारग ह्वै निकस्यौ।
तब ते कुलकानि कितीय करौ यह पापी हियो हुलस्यौ हुलस्यौ।

अब तौ जू भईसु भई नहिं होत है लोग अजान हँस्यौ सुहँस्यौ।
कोउ पीर न जानत सो तिनके हिय मैं रसखानि बस्यौ।।166।।
वा मुसकान पै प्रान दियौ जिय जान दियौ वहि तान पै प्यारी।
मान दियौ मन मानिक के संग वा मुख मंजु पै जोबनवारी।।
वा तन कौं रसखानि पै री ताहि दियौ नहि ध्यान बिचारी।
सो मुंह मौरि करी अब का हुए लाल लै आज समाज में ख्वारी।।167।।
मोहन सों अटक्यौ मनु री कल जाते परै सोई क्यौं न बतावै।
व्याकुलता निरखे बिन मूरति भागति भूख न भूषन भावै।।
देखे तें नैकु सम्हार रहै न तबै झुकि के लखि लोग लजावै।
चैन नहीं रसखानि दुहुँ विधि भूली सबैं न कछू बनि आवें।।168।।
भई बावरी ढूँढ़ति वाहि तिया अरी लाल ही लाल भयौ कहा तेरो।
ग्रीवा तें छूटि गयौ अबहीं रसखानि तज्यौ घर मारग हेरो।
डरियैं कहै माय हमारौ बुरी हिय नेकु न सुनो सहै छिन मेरो।
काहे को खाइबो जाइबो है सजनी अनखाइबो सीस सहेरो।।169।।
मो मन मोहन कों मिलि कै सबहीं मुसकानि दिखाइ दई।
वह मोहनी मूरति रूपमई सबहीं जितई तब हौं चितई।।
उन तौ अपने घर की रसखानि चलौ बिधि राह लई।
कछु मोहिं को पाप पर्यौ पल मैं पग पावत पौरि पहार भई।।170।।
डोलिबो कुंजनि कुंजनि को अरु बेनु बजाइबौ धेनु चरैबो।
मोहिनी तानन सों रसखानि सखानि के संग को गोधन गैबो।
ये सब डारि दिए मन मारि विसारि दयौ सगरौ सुख पैबौ।
भूलत क्यों करि नेहन ही को 'दही' करिबो मुसकाई चितैबो।।171।।
प्रेम मरोरि उठै तब ही मन पाग मरोरनि में उरझावै।
रूसे से ह्वै दृग मोसों रहैं लखि मोहन मूरति मो पै न आवै।।
बोले बिना नहिं चैन परै रसखानि सुने कल श्रीनन पावै।
भौंह मरोरिबो री रूसिबो झुकिबो पिय सों सजनी निखरावै।।171।।
बागन में मुरली रसखान सुनी सुनिकै जिय रीझ पचौगो।
धीर समीर को नीर भरौं नहिं माइ झकै और बबा सकुचौगो।।
आली दुरेधे को चोटनि नैम कहो अब कौन उपाय बचौगौ।
जायबौ भाँति कहाँ घर सों परसों वह रास परोस रचौगौ।।173।।
बेनु बजावत गोधन गावत ग्वालन संग गली मधि आयौ।

बाँसुरी मैं उनि मेरोई नाँव सुग्वालिनि के मिस टेरि सुनायौ।।
ए सजनी सुनि सास के त्रासनि नंद के पास उसास न आयौ।
कैसी करौ रसखानि नहिं हित चैनन ही चितचोर चुरायौ।।174।।

सोरठा

एरी चतुर सुजान भयौ अजान हि जान कै।
तजि दीनी पहचान, जान अपनी जान कौं।।175।।

सवैया

पूरब पुन्यनि तें चितई जिन ये अँखियाँ मुसकानि भरी जू।
कोऊ रहीं पुतरी सी खरी कोऊ घाट डरी कोऊ बाट परी जू।।
जे अपने घरहीं रसखानि कहैं अरु हौंसनि जाति मरी जू।
लाख जे बाल बिहाल करी ते निहाल करी न विहाल करी जू।।176।।
आजु री नंदलला निकस्यौ तुलसीबन तें बन कैं मुसकातो।
देखें बनै न बनै कहतै अब सो सुख जो मुख मैं न समातो।।
हौं रसखानि बिलोकिबे कौं कुलकानि के काज कियौ हिय हातो।
आइ गई अलबेली अचानक ए भटू लाज को काज कहा तो।।177।।
अति लोक की लाज समूह में छौंरि के राखि थकी वह संकट सों।
पल मैं कुलमानि की मेड नखी नहिं रोकी रुकी पल के पट सों।
रसखानि सु केतो उचाटि रही उचटी न संकोच की औचट सों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही अटकी अँलिया लटकी औचट सों।।178।।

रास लीला

कवित्त

अधर लगाइ रस प्याइ बाँसुरी बजाइ,
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियौ मन मैं।
नटखट नवल सुधर नंदनंदन ने,
करि कै अचेत चेत हरि कै जतन मैं।

झटपट उलट पुलट पट परिधान,
जानि लागीं लाजन पै सबै बाम बन मैं।
रस रास सरस रँगीलो रसखानि आनि,
जानि जोरि जुगुति बिलास कियौ जन मैं।।179।।

सवैया

काछ नयौ इकतौ बर जेउर दीठि जसोमति राज कर्यौ री।
या ब्रज-मंडल में रसखान कछू तब तें रस रास पर्यौ री।।
देखियै जीवन को फल आजु ही लाजहिं काल सिंगार हौं बोरी।
केते दिनानि पै जानति हो अंखियान के भागनि स्याम नच्चौरी।।180।।
आजु भटू इक गोपकुमार ने रास रच्यौ इक गोप के द्वारे।
सुंदर बानिक सों रसखानि बन्यौ वह छोहरा भाग हमारे।
ए बिधना! जो हमैं हँसतीं अब नेकु कहूँ उतकों पग धारैं।
ताहि बदौं फिरि आबे घरै बिनही तन औ मन जौवन बारैं।।181।।
आज भटू मुरली-बट के तट नंद के साँवरे रास रच्यौ री।
नैननि सैननि बैननि सों नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री।।
जद्यपि राखन कौं कुल कानि सबै ब्रज-बालन प्रान पच्यौ री।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानी कौं अंत लच्यौ पै लच्यौ री।।182।।
कीजै कहा जु पै लोग चबाव सदा करिबौ करि हैं बजमारौ।
सीत न रोकत राखत कागु सुगावत ताहिरी गावन हारौ।
आव री सीरी करैं अँखिया रसखान धनै धन भाग हमारौ।
आवत है फिरि आज बन्यौ वह राति के रास को नाचन हारौ।।183।।
सासु अछै बरज्यौ बिटिया जु बिलोके अतीक लजावत है।
मौहि कहै जु कहूँ वह बात कही यह कौन कहावत है।
चाहत काहू के मूँड़ चढ़यौ रसखान झुकै झुकि आवत है।
जब तैं वह ग्वाल गली में नच्यौ तब तै वह नाच नचावत है।।184।।
देखत सेज बिछी री अछी सु बिछी विष सो भिदिगो सिगरे तन।
ऐसी अचेत गिरी नहिं चेत उपाय करे सिगरी सजनी जन।
बोली सयानी सखि रसखानि बचौ यौं सुनाइ कह्यौ जुवती गन।
देखन कौं चलियै री चलौ सब रस रच्यौ मनमोहन जू बन।।185।।

फाग-लीला

सवैया

खेलत फाग लख्यौ पिय प्यारी को ता मुख की उपमा किहिं दीजै।
देखत ही बनि आवै भलै रसखान कहा है जो बार न कीजै।।
ज्यौं ज्यौं छबीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यौं त्यौं छबीलो छकै छबि छाक सों हेरै हँसे न टरै खरौ भीजै।।186।।
खेलत फाग सुहागभरी अनुरागहिं लालन कौं झरि कै।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन मैं रंग को भरि कै।
गेरत लाल गुलाल लली मन मोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली रसखानि अली मदमत्त मनी-मन कों हरि कै।।187।।
फागुन लाग्यो जब तें तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचौं नहिं एक बिसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है।।
साँझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
को सजनी निलजी न भई अब कौन भटू जिहिं मान बच्यौ है।।188।।

कवित्त

आई खेलि होरी ब्रजगोरी वा किशोरी संग।
अंग अंग अंगनि अनंग सरकाइ गौ।
कुंकुम की मार वा पै रंगति उद्दार उड़े,
बुक्का औ गुलाल लाल लाल बरसाइगौ।
छौड़े पिचकारिन वपारिन बिगोई छौड़ै,
तोड़ै हिय-हार धार रंग तरसाइ गौ।
रसिक सलोनो रिझवार रसखानि आजु,
फागुन मैं औगुन अनेक दरसाइ गौ।।189।।
गोकुल को ग्वाल काल्हि चौमुंह की ग्वालिन सों,
चाचर रचाइ एक धूमहिं मचाइ गौ।
हियो हुलसाइ रसखानि तान गाइ बाँकी,
सहज सुभाइ सब गाँव ललचाइ गौ।
पिचका चलाइ और जुवती भिंजाइ नेह,

लोचन नचाइ मेरे अगहि नचाइ गौ।
सासहिं नचाइ भोरी नंदहि नचाइ खोरी,
बैरनि सचाइ गोरी मोहि सकुचाइ गौ।।190।।

सवैया

आवत लाल गुलाल लियें मग सूने मिली इस नार नवीनी।
त्यौं रसखानि लगाइ हियें मौज कियौ मन माहिं अधीनी।
सारी फटी सुकुमारी हटी अंगिया दर की सरकी रगभीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अंक रिझाइ बिदा करि दीनी।।191।।
लीने अबीर भरे पिचका रसखानि खरौ बहु भाय भरौ जू।
मार से गोपकुमार कुमार से देखत ध्यान टरौ न टरौ जू।।
पूरब पुन्यनि हाथ पर्यौ तुम राज करौ उठि काज करौ जू।
ताहि सरौ लखि लाज जरौ इहि पाख पतिव्रत ताख धरौ जू।।192।।
मिलि खेलत फाग बढ़यौ अनुराग सुराग सनी सुख की रमकैं।
करि कुंकुम लै कर कंजमुखी प्रिय के दृग लावन कौं धमकैं।।
रसखानि गुलाल की धूँधर मैं ब्रजबालन की दुति यौ दमकैं।
मनौ सावन माँझ ललाई के मांज चहूँ दिसि तें चपला चमकैं।।193।।

राधा का सौंदर्य

कवित्त

आजु बरसाने बरसाने सब आनंद सों,
लाड़िली बरस गाँठि आई छबि छाई है।
कौतुक अपार घर- घर रंग बिसतार,
रहत निहारि सुध बुध बिसराई है।
आये ब्रजराज ब्रजरानी दधि दानी संग,
अति ही उमंगे रूप रासि लूटि पाई है।
गुनी जन गान धन दान सनमान, बाजे–
पौरनि निसान रसखान मन भाई है।।194।।
कैंधो रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि के पियूष पूष कीनो बिधि चंद घर।

कँधों मनि मानिक बैठारिबै को कंचन मैं,
जरिया जोबन जिन गढ़िया सुघर घर।
कैंधों काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैंधों यह भौर ज्ञान बोहित गुमान हर।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रंभा की,
वारि डारों तेही चित चोरनि चिबुक पर।।195।।

सवैया

श्री मुख यों न बखान सकै वृषभान सुता जू को रूप उजारो।
हे रसखान तू ज्ञान संभार तरैनि निहार जू रीझन हारो।
चारु सिंदूर को लाल रसाल लसै ब्रज बाल को भाल टिकारो।
गोद में मानौं बिराजत है घनश्याम के सारे को सारे को सारो।।196।।
अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली! अति कुंतल रासत है।
मखतूल समान के गुंज घरानि मैं किंसुक की छवि छाजत है।।
मुकता के कंदब ते अंब के मोर सुने सुर कोकिल लाजत है।
यह आबनि प्यारी जू की रसखानि बसंत-सी आज बिराजत है।।197।।
न चंदन खैर के बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी।
मनौ इंदुबधून लजावन कों सब ज्ञानिन काढ़ि धरी गन सी।।
रसखानि बिराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन सी।
दमकै दृग बान के घायन कों गिरि सेत के सधि के जीवन सी।।198।।
आज सँवारति नेकु भटू तन, मंद करी रति की दुति लाजै।
देखत रीझि रहे रसखानि सु और छटा विधिना उपराजै।
आए हैं न्यौतें तरैयन के मनो संग पतंग पतंग जू राजै।
ऐसें लसै मुकुतागन मैं तित तेरे तरौना के तीर बिराजै।।199।।
प्यारी की चारु सिंगार तरंगनि जाय लगी रति की दुति कूलनि।
जोबन जेब कहा कहियै उर पै छवि मंजु अनेक दुकूलनि।
कंचुकी सेत मैं जावक बिंदु बिलोकि मरैं मघवानि की सूलनि।
पूजे है आजु मनौ रसखान सु भूत के भूप बंधूक के फूलनि।।200।।
बाँकी मरोर गटी भृकुटीन लगीं अँखियाँ तिरछानि तिया की।
क सी लाँक भई रसखानि सुदामिनी तें दुति दूनी हिमा की।।
सोहैं तरंग अनंग को अंगनि ओप उरोज उठी छलिया की।

जोबनि जोति सु यौं दमकै उकसाइ दइ मनो बाती दिया की।।201।।
वासर तूँ जु कहूँ निकरै रबि को रथ माँझ आकाश अरै री।
रैन यहै गति है रसखानि छपाकर आँगन तें न टरै री।।
यौस निस्वास चल्यौई करै निसि द्यौस की आसन पाय धरै री।
तेजो न जात कछू दिन राति बिचारे बटोही की बाट परै री।।202।।
को लसै मुख चंद समान कमानी सी भौंह गुमान हरै।
दीरघ नैन सरोजहुँ तैं मृग खंजन मीन की पाँत दरै।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै।
जिहिं नीके नवै कटि हार के भार सों तासों कहैं सब काम करै।।203।।
प्रेम कथानि की बात चलैं चमकै चित चंचलता चिनगारी।
लोचन बंक बिलोकनि लोलनि बोलनि मैं बतियाँ रसकारी।
सोहैं तरंग अनंग को अंगनि कोमल यौं झमकै झनकारी।
पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी।।204।।

मानवती राधा

कवित्त

वारति जा पर ज्यौ न थकै चहुँ ओर जिती नृप ती धरती है।
मान सखै धरती सों कहाँ जिहि रूप लखै रति सी रती है।
जा रसखान बिलोकन काजू सदाई सदा हरती बरती है।
तो लगि ता मन मोहन कौं अँखियाँ निसि द्यौस हहा करती है।।205।।
मान की औधि है आधी घरी अरी जौ रसखानि डरै हित कें डर।
कै हित छोड़िये पारियै पाइनि एसे कटाछन हीं हियरा-हर।।
मोहनलाल कों हाल बिलोकियै नेकु कछू किनि छ्वै कर सों कर।
ना करिबे पर वारे हैं प्रान कहा करि हैं अब हाँ करिबे पर।।206।।
तू गरबाइ कहा झगर रसखानि तेरे बस बाबरो होसै।
तौ हूँ न छाती सिराइ अरी करि झार इतै उतै बाझिन कोसै।
लालहि लाल कियें अँखियाँ गहि लालहि काल सौं क्यौ भई रोसै।
ऐ बिधना तू कहा री पढ़ी बस राख्यौ गुपालहिं लाल भरोसै।।207।।
पिय सों तुम मान कर्यौ कत नागरि आजु कहा किनहूँ सिख दीनी।
ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनी बरुनी पग पोछ नवीनी।।

सुंदर हास सुधानिधि सो मुख नैननि चैन महारस भीनी।।
रसखानि न लागत तोहिं कछू अब तेरी तिया किनहूँ मति दीनी।।208।।

कवित्त

डहडही बैरी मंजु डार सहकार की पै,
चहचही चुहल चहूकित अलीन की।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै,
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की।।
तहतही करि रसखानि के मिलन हेतु,
बहबही बानि तजि मानस मलीन की।
महमही मंद-मंद मारुत मिलनि तैसी,
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन को।।209।।

सवैया

जो कबहूँ मग पाँव न देतु सु तो हित लालन आपुन गौनै।
मेरो कह्यौ करि मान तजौ कहि मोहन सों बलि बोल सलौने।
सौहें दिबावत हौं रसखानि तूँ सौंहैं करै किन लाखनि लौने।
नोखी तूँ मानिन मान कयौं किन मान बसत मैं कीनी है कौनै।।210।।

सखी शिक्षा

सवैया

सोई है रास मैं नैसुक नाच कै नाच नचायौ कितौ सबकों जिन।
सोई है री रसखानि किते मनुहारिन सूँघे चितौत न हो छिन।।
तौ मैं धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयौ बस हाहा करी तिन।
औसर ऐसौ मिलै न मिलै फिर लगर मोड़ो कनौड़ौ करै छिन।।211।।
तौ पहिराइ गई चुरिया तिहिं को घर बादरी जाय भरै री।
वा रसखान कों ऐतौ अधीन कैं मान करै चलि जाहि परै री।।
आबन कों पुततीत हठा करैं नैंननि धारि अखंड ढरैरी।
हाथ निहारि निहारि लला मनिहारिन की मनुहारि करै री।।212।।
मेरी सुनौ मति आइ अली उहाँ जौनी गली हरि गावत है।

हरि है बिलोकति प्राननि कों पुनि गाढ़ परें घर आवत है।।
उन तान की तान तनी ब्रज मैं रसखानि समान सिखावत है।
तकि पाय घरौं रपटाय नहीं वह चारो सो डारि फँदावत है।।213।।
काहे कूँ जाति जसोमति के गृह पोच भली घर हूँ तो रई ही।
मानुष को डसिबौ अपुनो हँसिबौ यह बात उहाँ न नई ही।।
बैरिनि तौ दृग-कोरनि में रसखान जो बात भई न भई ही।
माखन सौ मन लैं यह क्यों वह माखनचोर के ओर नई ही।।214।।
हेरति बारहीं यार उसै तुव बाबरी बाल, कहा धौ करैगी।
जौं कबहूँ रसखानि लखै फिर क्यों हूँ न बीर ही धीर धरैगी।
मानि ऐ काहू की कानि नहीं, जब रूपी ठगी हति रंग ढरैगी।
यातैं कहौं सिख मानि भटू यह हेरनि तेरे ही पैड़े परैगी।।215।।
बाँके कटाक्ष चितैबो सिख्यौ बहुधा बरज्यौ हित कै हितकारी।
तू अपने ढंग की रसखानि सिखावनि देति न हौं पचिहारी।
कौन की सीख सिखीं सजनी अजहूँ तजि दै बलि जाउँ तिहारी।
नंद के नंदन के फंद अजूँ परि जैहै अनोखी निहारिनिहारी।।216।।
बैरिन तूँ बरजी न रहै अबही घर बाहिर बैरु बढ़ैगौ।
टौना सुनंद छुटोना पढ़ै सजनी तुहि देखि बिसेषि पढ़ैगौ।।
हँसि है सखि गोकुल गाँव सतै रसखानि तबै यह लोक रढ़ैगौ।
बैरु चढ़ै धरहिं रहि बैठि अटा न एढ़ै बघनाम चढ़ैगौ।।217।।
गोरस गाँव ही मैं बिचिबो तचिबौ नहीं नंद-मुखानल झारन।
गैल गहें चलियै रसखानि तौ पाप बिना डरियै किहि कारन।।
नाहि री ना भटू, क्यों करि कै बन पैठत पाइवी लाज सम्हारन।
कुंजनि नंदकुमार बसै तहाँ मार बसै कचनार की डारन।।218।।
बार ही गोरस बेंचि री आजु तू माइ के मूढ़ चढ़ै कत मौंड़ी।
आवत जात ही होइगी साँझ भटू जमुना मतरौंड लौ औंड़ी।
पार गए रसखानि कहै अँखियाँ कहूँ होहिंगी प्रेम कनौड़ी।
राधे बलाइ ल्लौं जाइगी बाज अबै ब्रजराज सनेह की डौंड़ी।।219।।

कवित्त

ब्याहीं अनब्याहीं ब्रज माहीं सब चाही तासौं,
दूनी सकुचाहीं दीठि परै न जुन्हैया की।

नेकु मुसकानि रसखानि को बिलोकति ही,
चेरी होति एक बार कुंजनि दिखैया की।
मेरो कह्यौ मानि अंत मेरो गुन मानिहै री,
प्रात खात जात न सकात सोहैं मैया की।
माई की अटंक तौ लौं सासु की हटक जौ लौं,
देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की।।220।।

सवैया

मो हित तो हित है रसखान छपाकर जानहिं जान अजानहिं।
सोच चबाव चल्यौ चहुँधा चलि री चलि रीखत रोहि निदानहिं।
जो चहियै लहियै भरि चाहि हिये उहियै हित काज कहा नहिं।
जान दे सास रिसान दै नंदहिं पानि दे मोहि तू कान दै तानहिं।।221।।
तेरी गलीन मैं जा दिन ते निकसे मन मोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सो कौन सी बात चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत।
वे रसखानि जो रीझहैं नेकु तौ रीझि कै क्यों न बनाइ रिझावत।
बावरी जौ पै कलंक लग्यौ तो निसंक है क्यौं नहीं अंक लगावत।।222।।
जाहु न कोऊ सखी जमुना जल रोके खड़ो मग नंद को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै रसखानि चलावत प्रेम को भाला।
मैं जु गई हुती बैरन बाहर मेरी करी गति टूटि गौ माला।
होरी भई कै हरी भए लाल कै लाल गुलाल पगी ब्रजमाला।।223।।

सोरठा

अरी अनोखी बाम, तू आई गौने नई।
बाहर धरसि न पाय, है छलिया तुव ताक मैं।।224।।

संयोग-वर्णन

सवैया

बिहरैं पिय प्यारी सनेह सने छहरैं चुनरी के फवा कहरैं।
सिहरैं नव जोबन रंग अनंग सुभंग अपांगनि की गहरैं।
बहरें रसखानि नदी रस की लहरैं बनिता कुल हू भहरैं।

कहरैं बिरही जन आतप सों लहरैं लली लाल लिये पहरैं।।225।।
सोई हुती पिय की छतियाँ लगि बाल प्रबीन महा मुद मानै।
केस खुले छहरैं बहरैं फहरैं छबि देखत मैन अमानै।
वा रस मैं रसखानि पगी रति रैन जगी अँखियाँ अनुमानै।
चंद पै बिंब औ बिंब कैरव कैरव पै मुकता प्रयानै।।226।।
अंगनि अंग मिलाइ दोऊ रसखानि रहे लिपटे तरु घाहीं।
संगनि संग अनंग को रंग सुरंग सनी पिय दै गल बाहीं।
बैन ज्यौं मैन सु ऐन सनेह को लूटि रहे रति अंदर जाहीं।
नीबी गहै कुच कंचन कुंभ कहै बनिता पिय नाही जु नाहीं।।227।।
आज अचानक राधिका रूप-निधान सों भेंट भई बन माहीं।
देखत दीठि परे रसखानि मिले भरि अंक दिये गलबाहीं।
प्रेम-पगी बतियाँ दुहुँ घाँ की दुहुँ कों लगीं अति ही जित चाहीं।
मोहिनी मंत्र बसीकर जंत्र हटा पिय की तिय की नहिं नाही।।228।।
वह सोई हुती परजंक लली लला लोनो सु आह भुजा भरिकै।
अकुलाइ कै चौंकि उठी सु डरी निकरी चहैं अंकनि तें फरिकै।
झटका झटकी मैं फटौ पटुका दर की अंगिया मुकता झरिकै।
मुख बोल कढ़े रिस से रसखानि हटौ जू लला निबिया धरिकै।।229।।
अँखियाँ अँखियाँ सों सकाइ मिलाइ हिलाइ रिझाइ हियो हरिबो।
बतिया चित चोरन चेटक सी रस चारु चरित्रन ऊचिरबो।।
रसखानि के प्रान सुधा भरिबो अधरान पै त्यौं अधरा धरिबो।
इतने सब मैन के मोहिनी जंत्र पै मंत्र वसीकर सो करिबौ।।230।।
बागन का को जाओ पिया, बैठी ही बाग लगाभ दिखाऊँ।
एड़ी अनाकर सी मौरि रही, बरियाँ दोउ चंपे की डार नवाऊँ।।
छातनि मैं रस के निबुआ अरु घूँघट खोलि कै दाख चखाऊँ।
टाँगन के रस चसके रति फूलनि की रसखानि लूटाऊँ।।231।।

वियोग-वर्णन

सवैया

फूलत फूल सवै बन बागन बोलत मौर बसंत के आवत।
कोयल की किलकारी सुनै सब कंत बिदेहन तें सब धावत।

ऐसे कठोर महा रसखान जु नेकुह मोरी ये पीर न पावत।
हक ही सालत है हिय में जब बैरिन कोयल कूक सुनावत।।232।।
रसखान सुनाह वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सौ मुख गौ मुरझाय लगी लपटैं बरै स्वाँस हिया की।
ऐसे में आवत कान्ह सुने हुलसै सुतनी तरकी अंगिया की।
यों जन जोति उठी तन की उकसाय दई मनौ बाती दिया की।।233।।
बिरहा की जू आँच लगी तन में तब जाय परी जमुना जल में।
जब रेत फटी पताल गई तब सेस ज्यों धरती-तल में।
रसखान तबै इहि आँच मिटे तब आय कै स्याम लगैं गल मैं।।234।।
बाल गुलाब के नीर उसीर सों पीर न जाइ हियैं, जिन ढारी।
कंज की माल करौ जू बिछावत होत कहा पुनि चंदन गारौ।
एते इलाज बिकाज करौं रसखानि कों काहे कों जारे पै जारौ।
चाहत हौ जु छिवायौ भटू तौ दिखाबौं बड़ी बड़ी आँखनवारो।।235।।
काह कहूँ रतियाँ की कथा बतियाँ कहि आवत है न कछू री।
आइ गोपाल लियौ भरि अंक कियौ मनभायौ पियौ रस कू री।
ताहि दिना सों गड़ी अँखियाँ रसखानि मेरे अंग-अंग मैं पूरी।
पै न दिखाई परै अब बाबरी दै कै बियोग बिथा मजूरी।।236।।

कवित्त

काह कहूँ सजनी संग की रजनी नित बीतै मुकुंद कोंटे री।
आवन रोज कहैं मनभावन आवन की न कबौ करी फेरी।
सौतिन-भाग बढ़यौ ब्रज मैं जिन लूटत हैं निसि रंग घनेरी।
मो रसखानि लिखी बिधना मन मारिकै आयु बनी हौं अहेरी।।237।।

सवैया

आये कहा करि कै कहिए वृषमान लली सों लला दृग जोरत।
ता दिन तें अँसुवान की धार रुकी नहीं जद्यपि लोग निहोरत।
बेगि चलो रसखान बलाइ लौं क्यों अभिमानन भौंह मरोरत।
प्यारे! सुंदर होय न प्यारी अबै पल अधिक में ब्रज बोरत।।238।।
गोकुल के बिछुरे को सखी दुख प्रान ते नेकु गयौ नहीं काढ़यौ।
सो फिर कोस हजार तें आय कै रूप दिखाय दधे पर दाध्यौ।

सो फिर द्वारिका ओर चले रसखान है सोच यहै जिय गाढ़यौ।
कौन उपाय किये करि है ब्रज में बिरहा कुरुक्षेत्र को बाढ़यौ।।239।।
गोकुल नाथ बियोग प्रलै जिमि गोपिन नंद जसोमति जू पर।
बाहि गयौ अँसुवान प्रवाह भयौ जल में ब्रजलोक तिहू पर।।
तीरथराज सी राधिका सु तो रसखान मनौं ब्रज भू पर।
पूरन ब्रह्म ह्वै ध्यान रह्यौ पिय औधि अखैबट पात के ऊपर।।240।।
ए सजनी जब तें मैं सुनी मथुरा नगरी बरषा रितु आई।
लै रसखान सनेह की तानन कोकिल मोर मलार मचाई।
साँझ तें भोर लौं भोर तें साँझ लौं गोपिन चातक ज्यौं रट लाई।
एरी सखी कहिये तो कहाँ लगि बैर अहीर ने पीर न पाई।।241।।
मग हेरत धू-धरे नैन भए रसना रट वा गुन गावन की।
अंगुरी-गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहि पावन की।
पथिकौ कोऊ ऐसाजु नाहिं कहै सुधि है रसखान के आवन की।
मनभावन आवन सावन में कहीं औधि करी डग बावन की।।242।।

सपत्नी-भाव

सवैया

वा रसखानि गुनौं सुनि के हियरा अत टूक ह्वै फाटि गयौ है।
जानति हैं न कछू हम ह्याँ उनवाँ पढ़ि मंत्र कहा धौं दयौ है।
साँची कहैं जिय मैं निज जानि कै जानति हैं जस जैसो लयौ है।
लोग लुगाई सबै ब्रज माँहि कहैं हरि चेरी को चेरो भयो है।।243।।
जानै कहा हम मूढ़ सवै समझीन तबै जबहीं बनि आई।
सोचत हैं मन ही मन मैं अब कीजै कस बनियाँ जुगँवाई।।
नीचो भयौ ब्रज को सब सीस मलीन भई रसखानि दुहाई।
चेरी को चेटक देखहु ही हाई चेरो कियौ धौं कहा पढ़ि माई।।244।।
काइ सौं माई वह करियै सहियै सोई जो रसखान सहावैं।
नेय कहा जब और कियौं तब नाचियै सोई जौ नचावैं।
चाहत है हम और कहा सखि क्यों हू कहू पिय देखन पावैं।
चरियै सौं जगुपाल रच्यौ तौं भली ही सबै मिलि चेरी कहावें।।245।।
भेती जू पें कुबरी ह्याँ सखी भरी लातन मूका बकोटती लेती।

लेती निकारि हिये की सबै नक छेदि कौड़ी पिराइ कै देती।।
देती नचाइ कै नाच वा राँड कौं लाल रिझावन को फल सेती।
सेती सदाँ रसखानि लियें कुबरी के करेजनि सूलसी भेती।।246।।

कुबलियापीड़-वध

सवैया

कंस के क्रोध की फैलि रही सिगरे ब्रजमंडल माँझ फुकार सी।
आइ गए कछनी कछिकै तबहीं नट-नागरे नंद कुमार-सी।।
द्वैरद को रद खैंचि लियौ रसखान हिये माहि लाई विमार-सी।
लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कलंक तमाल तें कीरति-डार सी।।247।।

उद्धव-उपदेश

सवैया

जोग सिखावत आवत है वह कौन कहावत को है कहाँ को।
जानति हैं बर नागर है पर नेकहु भेद लख्यौ नहिं ह्याँ को।
जानति ना हम और कछू मुख देखि जियै नित नंदलला को।
जात नहीं रसखानि हमैं तजि राखनहारी है मोरपखा को।।248।।
अंजन मंजन त्यागौ अली अंग धारि भभूत करौ अनुरागै।
आपुन भाग कर्यौ सजनी इन बावरे ऊधो जू को कहाँ लागै।
चाहै सो और सबै करियै जू कहै रसखान सयानप आगै।
जो मन मोहन ऐसी बसी तो सबै री कहौ मुय गोरस जागै।।249।।
लाज के लेप चढ़ाइ कै अंग पची सब सीख को मंत्र सुनाइ कै।
गारुड़ ह्वै ब्रज लोग भक्यौ करि औषद बेसक सौहैं दिखाइ कै।।
ऊधौ सौं रसखानि कहै लिन चित्त धरौ तुम एते उधाइ कै।
कारे बिसारे को चाहैं उतर्यौं अरे बिख बाबरे राख लगाइ कैं।।250।।
सार की सारी सो पारीं लगै धरिबे कहै सीस बघंबर पैया।
हाँसी सो दासी सिखाई लई है बेई जु बेई रसखानि कन्हैया।
जोग गयौ कुबजा की कलानि मैं री कब ऐहै जसोमति मैया।
हाहा न ऊधौ कुढ़ाऔ हमें अब हीं कहि दै ब्रज बाजे बधैया।।251।।

ब्रज-प्रेम

सवैया

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ परु को तजि डारौं।
आठहु सिद्ध निवौ निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं।
ए रसखानि जबैं इन नैनन ते ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर बारौं।।252।।

कवित्त

ग्वालन संग जैबो बन एबौ सु गायन संग,
हेरि तान गैबो हा हा नैन कहकत हैं।
ह्याँ के गज मोती माल वारौं गुंज मालन पै,
कुंज सुधि आए हाय प्रान धरकत हैं।
गोबर को गारौ सु तो मोहि लागै प्यारी कहा,
भयौ मौन सोने के जटित मरकत हैं।
मंदर ते ऊँचे यह मंदिर है द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिये खरकत हैं।।253।।

गंगा महिमा

सवैया

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि आधिक ओठ पै आधिक नंद से बाजत री।
रसखानि पितंबर एक कंधा पर एक वाघंबर राजत री।
कोउ देखउ संगम लै बुड़की निकसे यहि मेख सों छाजत री।।254।।
बैद की औषध खाइ कछू न करै बहु संजम री सुनि मोसें।
तो जल-पान कियौ रसखानि सजीवन जानि लियौ रस तोसें।
ए री सुधामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य बनै तोहिं पोसें।
आक धतूरो चबात फिरै बिख खात फिरै सिब तैरै भरोसे।।255।।

शिव-महिमा

सवैया

यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सों धूलि लगावत है।।
चहुँ ओर जटा अटकै लटके फनि सों कफनी फहरावत हैं।।
रसखानि सोई चितवै चित दै तिनके दुखदंद भजावत हैं।
गज खाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत हैं।।256।।

रसखान की भक्ति-भावना

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन कवियों में रसखान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'रसखान' को रस की खान कहा जाता है। इनके काव्य में भक्ति, श्रृंगार रस दोनों प्रधानता से मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और प्रभु के सगुण और निर्गुण निराकार रूप के प्रति श्रद्धालु हैं।

रसखान की भक्ति-भावना

रसखान की समाधि, महावन, मथुरा

हिन्दी-साहित्य का भक्ति-युग (संवत् 1375 से 1700 वि0 तक) हिन्दी का स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग में हिन्दी के अनेक महाकवियों विद्यापति, कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, नंददास, तुलसीदास, केशवदास, रसखान आदि ने अपनी अनूठी काव्य-रचनाओं से साहित्य के भण्डार को सम्पन्न किया। इस युग में सत्रहवीं शताब्दी का स्थान भक्ति-काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, रसखान आदि की रचनाओं ने इस शताब्दी के गौरव को बढ़ा दिया है। भक्ति का जो आंदोलन दक्षिण से चला वह हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल तक सारे भारत में व्याप्त हो चुका था। उसकी विभिन्न धाराएं उत्तर भारत में फैल चुकी थीं। दर्शन, धर्म तथा साहित्य के सभी क्षेत्रों में उसका गहरा प्रभाव था। एक ओर सांप्रदायिक भक्ति का जोर था, अनेक तीर्थस्थान, मंदिर, मठ और अखाड़े उसके केन्द्र थे। दूसरी ओर ऐसे भी भक्त थे जो किसी भी तरह की सांप्रदायिक हलचल से दूर रह कर भक्ति में लीन रहना पसंद करते थे। रसखान इसी प्रकार के भक्त थे। वे स्वच्छंद भक्ति के प्रेमी थे।

भक्तिकाल के व्यापक अध्ययन से पता चलता है कि उसकी बहुत सी ऐसी विशेषताएं हैं जो सभी भक्त कवियों में समान रूप से पाई जाती हैं।

रसखान की कविता में भी वे देखी जा सकती हैं। सभी भक्तों ने भगवान का निरूपण किया है। यह दूसरी बात है कि अपनी-अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार किसी ने भगवान के किसी रूप पर अधिक बल दिया है और किसी ने उसके अन्य रूपों पर। लेकिन यह निश्चित है कि सभी दृष्टि में भगवान एक हैं, अद्वितीय हैं, वह निर्गुण भी है और सगुण भी। वही संसार की रचना करता है और संहार करता है। वह इस जगत् का शासक है। घट-घट व्यापी है। सर्वशक्तिमान है। वह सच्चिदानंद है। भक्त का एकमात्र लक्ष्य है भगवान और उसके प्रेम को प्राप्त करना। भगवान के प्रति प्रेम ही 'भक्ति' है। उसके पा लेने पर जीव को और किसी वस्तु की कामना नहीं रह जाती।

भगवान की भक्ति के बहुत से साधन बतलाए गए हैं। सभी भक्तों ने भक्त और भगवान के बीच रागात्मक-संबंध की स्थापना पर बल दिया है। इसके बिना दूसरे साधन व्यर्थ हो जाते हैं। साधन के रूप में गुरु और सत्संग की महिमा सभी ने बतलाई है। जीव को सांसारिक विषयों से हटाकर भगवान की ओर लगाने के लिए, उसके मन में वैराग्य और ईश्वर-प्रेम की भावना जगाने के लिए, अनेक प्रकार के उपदेशों और चेतावनी की योजना की है। सभी ने चित्त को शुद्ध रखने पर बल दिया है। बाहरी आचारों, आडंबर आदि की कटु निंदा की है। भगवान के प्रति शरणागति या आत्मनिवेदन को सबसे अधिक कल्याणकारी बतलाया है।

रसखान के समय हिन्दी-साहित्य में भक्ति की दो मुख्य धाराएं थीं-

निर्गुण भक्तिधारा

सगुण भक्तिधारा।

निर्गुण भक्तिधारा के कवियों ने भगवान के निर्गुण निराकार रूप की उपासना पर बल दिया। उन्होंने भजन-पूजन आदि के विधि-विधान की आवश्यकता नहीं स्वीकार की। भगवान के अवतारों, लीलाओं आदि को माया मानकर उसे अपनी भक्ति का विषय नहीं बनाया। उनका सामान्य सिद्धांत था—ईश्वर को अपने भीतर देखना, सारे संसार में उसकी विभूति का दर्शन करना।

निर्गुण भक्ति-धारा की दो शाखाएँ—

ज्ञानाश्रयी शाखा

पहली शाखा को 'निर्गुण काव्यधारा' या 'निर्गुण सम्प्रदाय' नाम दिया गया है। इस शाखा की विशेषता यह थी कि इसने अधिकतर प्रेरणा भारतीय

स्रोतों से ग्रहण की। इसमें ज्ञानमार्ग की प्रधानता थी। इसलिए पं. रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'ज्ञानाश्रयी शाखा' कहा है। इस शाखा के कवियों ने भक्तिसाधना के रूप में योग-साधना पर बहुत बल दिया है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर हुए।

प्रेममार्गी शाखा

दूसरी शाखा सूफी काव्य धारा के नाम से विख्यात है। इस शाखा के कवियों ने हठयोग आदि की साधना की अपेक्षा भावना को महत्त्व दिया। इसका मुख्य आधार प्रेम था। प्रेम पर आश्रित होने के कारण ही आचार्य शुक्ल ने इसे 'प्रेममार्गी शाखा' कहा है। इस शाखा के भक्त कवियों की भक्ति-भावना पर विदेशी प्रभाव अधिक है। इस प्रसंग में यह बात ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहती कि इस शाखा के मलिक मुहम्मद जायसी आदि कवि मुसलमान थे। इसलिए उन्होंने अपने संस्कारों के अनुसार भक्ति का निरूपण किया। वे भारतीय थे, इसलिए उन्होंने अपने प्रेमाख्यानों के लिए भारतीय विषय चुने, भारतीय विचारधारा को भी अपनाया, परंतु उस पर विदेशी रंग भी चढ़ा दिया। रसखान भी मुसलमान थे। अतएव उन पर इस्लाम का प्रभाव बहुत था। साथ ही सूफी प्रेम-पद्धति का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से मिलता है। वे किसी मतवाद में बंधे नहीं। उनका प्रेम स्वच्छंद था। जो उन्हें अच्छा लगा, उन्होंने बिना किसी संकोच के उसे आधार बनाया। अतएव उनकी कविता में भारतीय भक्ति-पद्धति और सूफी इश्क-हकीकी का सम्मिश्रण मिलता है। उनकी भक्ति का ढांचा या शरीर भारतीय है किंतु आत्मा इस्लामी एवं तसव्वुफ से रंजित है।

सगुण भक्तिधारा की विशेषता यह है कि उसमें भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम की महिमा का वर्णन होता है। इस वर्णन के लिए भक्तों ने भगवान के अवतारों में राम और कृष्ण को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। भक्तिकाल की रचनाओं में इनकी ही महिमा मुख्य रूप से गाई गई है। इन दोनों अवतारों के आधार पर ही सगुण भक्तिधारा का हिन्दी-साहित्य में दो उपधाराओं के रूप में विभाजन मिलता है-

रामभक्ति शाखा और
कृष्णभक्ति शाखा।

रामभक्ति शाखा

राम की उपासना को निर्गुण संतों ने भी आदर दिया और सगुण भक्तों ने भी। अंतर यह था कि निर्गुण संप्रदाय में निर्गुण निराकार राम की उपासना का प्रचार हुआ और सगुण-रामभक्तों ने उनकी अवतार-लीला को गौरव दिया। उन्होंने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया। रामभक्ति शाखा में मर्यादावाद का पालन किया गया। दास्य भक्ति को प्रधानता दी गई। इसके सबसे बड़े कवि तुलसीदास हुए। कृष्ण भक्त कवियों की माधुर्य भक्ति का प्रभाव रामभक्ति पर भी पड़ा। इस शाखा में एक रसिक संप्रदाय चल पड़ा। उसमें राम और सीता की शृंगार-लीलाओं का राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं की भांति ही विस्तृत चित्रण किया गया। फिर भी इस शाखा में भगवान के सौंदर्य की अपेक्षा उनके शील और शक्ति का ही निरूपण अधिक किया गया है।

कृष्णभक्ति शाखा

कृष्ण-भक्ति-शाखा में भगवान कृष्ण के सौंदर्य-पक्ष की ही प्रधानता रही। कृष्ण का चरित्र विलक्षण है। उनका ध्यान कृष्ण के मधुर रूप और उनकी लीला माधुरी पर ही केंद्रित रहा। भगवान की महिमा का गान करते हुए कहीं-कहीं प्रसंगवश उनके लोक रक्षक रूप का भी उल्लेख कर दिया है, किन्तु मुख्य विषय गोपी-कृष्ण का प्रेम है। कृष्ण-भक्ति का केन्द्र वृन्दावन था। श्री कृष्ण की लीला-भूमि होने के कारण उनके भक्तों ने भी ब्रज को अपना निवास स्थान बनाया। रसखान के भी वृन्दावन में रहने का उल्लेख मिलता है।

रसखान की सारी रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वे अधिकांश में भक्तिपरक न होकर शृंगारपरक ही हैं। सत्य तो यह है कि उनके कुछ ही पद्य निर्विवाद रूप से भक्तिपूर्ण कहे जा सकते हैं। 'प्रेमवाटिका' में कुछ पद्य ऐसे भी हैं जिन्हें लौकिक प्रेम और अलौकिक प्रेम दोनों पर घटाया जा सकता है। तो फिर बहुसंख्यक कवि को शृंगारी कवि न मानकर भक्तकवि कैसे माना जा सकता है? इस विषय में 'आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र' की स्थापना ध्यान देने योग्य है-

रसखानि ने स्वयं प्रेम को साध्य कहा है-
जेहि पाए बैकुंठ अरु हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सप्रेम कहाहि॥

श्री वल्लभाचार्य ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से भक्ति को साध्य अवश्य कहा है, पर ईश्वर-भक्ति को ही, यह कभी न भूलना चाहिए। पर 'रसखानि' स्पष्ट कहते हैं–

इक-अंगी बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान।

श्री वल्लभाचार्य के अनुसार भगवद्भक्ति या अलौकिक प्रेम ही साध्य हो सकता है। उसे ही एकांगी, निर्हेतुक, एकरस होना चाहिए। पर रसखान लौकिक प्रेम में भी इसे स्वीकार करते हैं। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छंद रखते थे उसी प्रकार भक्ति की सांप्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्तिमार्गी कृष्णभक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कवियों सबसे पृथक् स्वच्छंदमार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्तिविषयक रचना के कारण भक्त कहता हो तो कहे, पर इतने 'व्यतिरेक' के साथ कहे कि ये स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नहीं है।

अपनी उपर्युक्त रचना के समर्थन में मिश्र जी ने एक दूसरा ठोस तर्क भी दिया है। रसखान की काव्यशैली कृष्णभक्त कवियों की परंपरागत शैली से भिन्न है। कृष्ण-भक्तों की अधिकतर रचनाएं गीत में ही मिलती हैं। कवित्त-सवैया वाली शैली में इन्होंने पूरी आस्था नहीं दिखाई। मध्यकाल के शृंगारी कवियों ने (विशेष कर के परवर्ती रीतिकाल के शृंगारी कवियों में) कवित्त-सवैया वाली शैली को ही प्रमुखता दी है। उनकी सुन्दर समझी जाने वाली रचनाएं इसी शैली में लिखी गई हैं। उनकी ख्याति और लोकप्रियता उनके कवित्त सवैयों पर ही आश्रित है। इस संबंध में यह नहीं भूलना चाहिए कि 'सुजान रसखान' के आरंभिक कवित्त-सवैयों में भक्ति-भाव की प्रधानता है।

भक्ति का स्वरूप

भक्तिशास्त्र के आचार्यों ने भक्ति को प्रेमस्वरूप बतलाया है।

शांडिल्य ने अपने भक्तिसूत्र में भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है कि ईश्वर में की गई परानुरक्ति भक्ति है।

नारद ने भी भगवान के प्रति किए गए परम प्रेम को भक्ति कहा है।

मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति का लक्षण स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि भगवद्धर्म के कारण द्रुत चित्त की परमेश्वर के प्रति धारावाहिक वृत्ति को भक्ति कहते हैं।

पुराणों आदि में भी इसी प्रकार की भक्ति का निरूपण किया गया है। विष्णु पुराण में भक्त ने भगवान से प्रार्थना की है–'हे भगवान! जिस प्रकार युवतियों का मन युवकों में और युवकों का मन युवतियों में रमण करता है, उसी प्रकार मेरा मन तुममें रमण करे। श 'इसी तरह की प्रार्थना तुलसीदास ने भी भगवान राम से की है–'हे रघुनाथ राम ! जैसे कामियों को कामिनी प्रिय होती है, जैसे लोभियों को धन प्रिय होता है, वैसे ही तुम मुझे प्रिय लगो। भक्तों ने लौकिक जीवन से इस प्रकार की उपमाएं भगवान के प्रति प्रेम की अतिशय आसक्ति सूचित करने के लिए दी हैं। रसखान भी परमप्रेम को भक्ति मानते हैं। प्रेम की अतिशयता और अनंन्यता का प्रतिपादन करने के लिए भक्तों ने चातक का आदर्श उपस्थित किया है। रसखान ने भी इस आदर्श में अपनी आस्था प्रकट की है-

बिमल सरल रसखानि मिलि भई सकल रसखानि।
सोई नव रसखानि कौं, चित चातक रसखानि।।

संसार के अन्य लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार इन्द्र, सूर्य, गणेश आदि देवताओं की उपासना करते हैं। उनकी भक्ति करके अपने अभीष्ट फलों की प्राप्ति करते हैं। परन्तु रसखान की अनुरक्ति एकमात्र श्रीकृष्ण में ही है। उनका दृष्टिकोण उदार है। उनके मन में विभिन्न प्रकार के देवों और देवियों के भक्ति के विषय में कोई विरोधभाव नहीं है। वे दूसरों की निंदा नहीं करते। दूसरे लोग उन्हें भजना चाहते हैं तो भजें। रसखान की दृष्टि में भगवान श्रीकृष्ण ही भजनीय हैं। वे अपने कृष्ण को चाहते हैं। उन्हें त्रिलोक की चिंता नहीं है।

सेष सुरेस दिनेस गनेस प्रजेस घनेस महेस मनावौ।
कोऊ भवानी भजौ मन की सब आस सबै बिधि जाई पुरावौ।
कोऊ रमा भजि लेहु महाधन कोउ कहूँ मनबाँदित पावौ।
पै रसखानि वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसावौं।

भगवान के प्रति परम प्रेम का उदय होने पर भक्त की सारी कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेंद्रियां, मन और प्राण सब ईश्वर निष्ठ हो जाते हैं। उसे इन सबकी सार्थकता केवल इस बात में दिखाई देती है कि ये सब अपना उपयोग केवल भगवान की महिमा के कीर्तन, श्रवण आदि में करें। रसखान का मत है कि रसखानि वही है जो रसखानि श्रीकृष्ण में परम अनुराग रखे-

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।

जान वही उन आन के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सों है रसखानि।

इस ईश्वर प्रेम की उपलब्धि अपने में इतनी ऊँची है कि इसकी तुलना में संसार के सारे ऐश्वर्य तुच्छ दिखाई पड़ते हैं–

कंचन मंदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाई सदा झलकैयत।
प्रात ही ते सगरी नगरी नग मोतिन ही को तुलानि तुलैयत।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचौयत।
ऐसे भए तो कहा रसखानि जो साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत।

सभी प्रकार के प्रेम की (चाहे वह लौकिक हो या अलौकिक) यह विशेषता है कि प्रेमी केवल अपने प्रेमपात्र से ही प्रेम नहीं करता बल्कि उस प्रेमपात्र से संबंध रखने वाली प्रत्येक वस्तु उसे अत्यन्त प्रिय लगने लगती है। रसखान की भी यही दशा है। इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण वे कृष्ण की लकुटी और कामरी पर तीनों लोकों का राज्य त्यागने को तैयार हैं, नंद की गायों को चराने में वे आठों सिद्धियों और नवों निधियों के सुख को भुला सकते हैं, ब्रज के वनों एवं उपवनों पर सोने के करोड़ों महल निछावर करने को प्रस्तुत हैं–

वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को ताजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।
ए रसखानि जबै इन नैनन तैं ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं।

भक्ति की महिमा

रसखान तुलसीदास की भांति भक्तकवि नहीं थे। अपने इसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने जोर देकर कहा कि सभी वेदों, पुराणों, आगमों और स्मृतियों का निचोड़ प्रेम (अर्थात ईश्वर-विषयक प्रेम) ही है–

स्त्रुति पुरान आगम स्मृतिहि, प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहि उपज हिय, प्रेम-बीज-अंकुवार।

मोक्ष के अनेक साधन बतलाए गए हैं जिनमें तीन मुख्य हैं–

कर्म,
ज्ञान और
उपासना।

रसखान के अनुसार भक्ति या प्रेम इन सबमें श्रेष्ठ है। इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। कर्म आदि में अहंकार बना रह सकता है या उसका फिर से उदय हो सकता है। परन्तु भक्ति-दशा में चित्त के द्रुत हो जाने पर अहंकार के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। भक्ति रागात्मक वृत्ति है, संकल्प-विकल्पात्मक, मन स्वभावतः रागात्मक है। वह इन्द्रियों के माध्यम से विषयों की ओर प्रवृत्ति रहता है। इस प्रकार जीवों को वासना के बंधन में बांधे रहता है। ईश्वर-विषयक प्रेम का उदय होने पर काम, क्रोध आदि अपने आप तिरोहित हो जाते हैं।

इसी अभिप्राय से रसखान ने इस परमप्रेम को काम आदि से परे कहा है–

काम क्रोध मद मोह भय लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सब ही तें प्रेम है परे, कहत मुनिवर्य।

भक्तों ने इस बात पर जो दिया है कि भक्ति-भाव के अभाव में पुस्तकी विद्या व्यर्थ है। तुलसीदास ने भी इसे वाक्यज्ञान कहा है और बतलाया है कि वाक्यज्ञान मात्र से भव-सागर को पार करना असंभव है।

रसखान के पूर्ववर्ती कवि कबीरदास ने तो बड़े कड़े शब्दों में कोरे शास्त्रज्ञान को व्यर्थ बताकर ईश्वर-प्रेम की महिमा का बखान किया है–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै आखर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ।

रसखान ने भी मानों कबीर के स्वर में स्वर मिलाकर घोषणा की है कि प्रेम को जाने बिना शास्त्र पढ़कर पंडित होना या कुरान पढ़कर मौलवी होना व्यर्थ है–

सास्त्रन पढ़ि पंडित भए, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यौ नहीं, कहा कियौ रसखान।

उनकी मान्यता है कि जिसने प्रेम को नहीं जाना, उसने कुछ भी नहीं जाना और जिसने प्रेम को जान लिया, उसके लिए कुछ भी जानने योग्य बात शेष नहीं रही–

जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं जान्यौ जात बिसेष।
सोइ प्रेम जेहि जानि कै, रहि न जात कछु सेष।

संसार में जितने भी सुख हैं (चाहे वे विषयों से प्राप्त हों या पूजा, निष्ठा और ध्यान से) भक्ति का सुख उन सबसे बढ़कर है–

दंपति सुख अरु-विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान।
इन तें परे बखानियै, सुद्ध प्रेम रसखानि।

दु:ख के नाश और आनंद की प्राप्ति के ज्ञान, ध्यान आदि जितने भी साधन बतलाए गए हैं, वे सब प्रेम-भक्ति के बिना निष्फल हैं–

ज्ञान ध्यान बिद्यामती, मत बिस्वास बिबेक।
बिना प्रेम सब धूरि हैं, अगजग एक अनेक।

प्रेम-भक्ति की महिमा इतनी बड़ी है कि उसे प्राप्त कर लेने पर भक्त भगवान के बैकुण्ठ-लोक और स्वयं भगवान की भी कामना नहीं करता, वह शुद्ध प्रेममय हो जाता है–

जेहि पाए बैकुण्ठ अरु हरिहू की नहिं चाहि।
सोई अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सप्रेम कहाहि।

सामान्य रूप से जीव के चार पुरुषार्थ बतलाए गए है-

1. धर्म,
2. अर्थ,
3. काम और
4. मोक्ष।

इन चारों में मोक्ष सबसे महान् है। परन्तु प्रेम-भक्ति की तुलना में मोक्ष भी तुच्छ है। इसीलिए सच्चा भक्त मोक्ष प्राप्त करने की कामना नहीं करता। स्वयं भगवान भी भक्तों की इस विशेषता को जानते हैं। अतएव वे उन्हें मुक्ति न देकर भक्ति का ही वरदान देते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है-

सुगनोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन्ह कहुँ भेद भगति प्रभु देहीं।।

रसखान का भी ऐसा ही विश्वास है। इसका कारण है ज्ञान-मार्ग के सहारे प्राप्त किए गए मोक्ष पद के खो जाने की संभावना बनी रहती है। लेकिन, प्रेम-भक्ति की विशेषता यह है कि उसका उदय होने पर संसार के जितने भी बंधन हैं वे सब एक बार ही सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं–

याही तें सब मुक्ति तें, लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भए नसि जाहिं सब, बंधे जगत् के नेम।

प्रेम-भक्ति की श्रेष्ठता का एक कारण और भी है। इस संसार में जितने भी साधन और साध्य हैं, वे सब भगवान के अधीन हैं और भगवान स्वयं प्रेम के वश में हैं।

उन्होंने (गीता आदि में) स्वयं ही इसे विशेष गौरव दिया है।

रसखान ने भी कहा है–

हरि के सब आधीन पै हरी प्रेम-आधीन।
याही ते प्रभु आपुहीं, याहि बड़प्पन दीन।

प्रेम-भक्ति की इन्हीं विशेषताओं के कारण रसखान उसे परम धर्म मानते हैं। उसे कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती–

बेद मूल सब धर्म यह कहैं सबै स्रुति सार।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार।

प्रेम-भक्ति

अपनी 'प्रेमवाटिका' में रसखान ने प्रेम की जो विशेषताएं बतलाई हैं वे लौकिक प्रेम और पारलौकिक प्रेम पर समान रूप से लागू होती हैं। जीवन-दर्शन के कर्म को समझने वालों ने कहा है कि जीव की जीवन-साधना का सबसे बड़ा लक्ष्य संसार के बंधन से मोक्ष है। कर्म, ज्ञान आदि इसी साध्य के साधन हैं। भक्ति की विलक्षणता इस बात में है कि वह साधन भी है और साध्य भी। यही बात रसखान ने कही है। उनका कहना है कि प्रेम कारण भी है और कार्य भी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेम या भक्ति के लिए किसी दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं है। यह स्वतंत्र है, अपने में पूर्ण है–

कारज-कारन रूप यह, प्रेम अहै रसखान।
कर्ता कर्म क्रिया करन, आपहि प्रेम बखान।

ईश्वर-प्रेम अनुपम, अगम्य और असीम है, वह अंतिम विश्राम है। वरुण और शंकर जैसे देवों की महिमा भी प्रेम के ही कारण है। पुत्र, क्लत्र, मित्र, बन्धु आदि के प्रति अथवा इनके द्वारा किया गया स्नेह शुद्ध प्रेम नहीं है–

मित्र कलत्र सुबंधु सुत, इनमें सहज सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमैं नहीं अकथ कथा सबिसेह।

शुद्ध प्रेम तो केवल भगवान के प्रति ही हो सकता है। इसीलिए भक्त-चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान राम के मुख से कहलवाया है–

जननी जनक बंधु सुत बारा। तनु धन भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बहोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयं बसै धनु जैसें।।

रसखान के उपर्युक्त दोहे की भी व्यंजना यही है कि भक्त का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने सभी लौकिक संबंधों का आरोप भगवान पर कर दे। जीव का उत्कर्ष दो प्रकार का माना गया है–

अभ्युदय और

नि:श्रेयस।

इन्हीं को दूसरे शब्दों में भुक्ति और मुक्ति भी कहा गया है। भौतिक भुक्ति क्षणिक है। मुक्ति का स्थायित्व भी भक्त की दृष्टि में संदेहास्पद है। अत: वह इन दोनों से ऊपर उठकर केवल भक्ति की कामना करता है।

रसखान के निम्नलिखित सवैये में इसी भाव की अभिव्यक्ति की गई है–

संपति सौं सकुचाइ कुबेरहि रूप सौं दीनी चिनौती अनंगहिं।
भोग कै कै ललचाइ पुरंदर जोग कै गंग लई घरि मंगहि।
ऐसे भए तो कहा रसखानि रसै रसना जौ जु मुक्ति-तरंगहि।
दै चित ताके न रंग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रंगहि।

भगवान केवल प्रेम से ही प्राप्य हैं। वेद-शास्त्र के अध्ययन या अन्य उपायों से उनकी प्राप्ति दुर्लभ है। रसखान की अधोलिखित पंक्तियों में इसी भाव की व्यंजना हुई है–

ब्रह्म में ढूँढयौ पुरानन गानन बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि परयौ रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देखौ दुरौ वह कुंज-कुटीर में बैठौ पलोटत राधिका-पायन।

प्रेम और हरि में कोई तात्विक भेद नहीं है। प्रेम हरि रूप है और हरि प्रेम-रूप हैं। दोनों में सूरज और धूप की भांति भेदाभेद है। इसका तात्पर्य यह है कि भक्त भगवान से प्रेम करते-करते ईश्वर-रूप हो जाता है, उससे भेद का अनुभव नहीं करता–

प्रेम हरी कौ रूप है, त्यौं हरि प्रेम-सरूप।
एक होय द्वै यौं लसै, ज्यों सूरज औ' धूप।

भगवान की भांति ही प्रेम भी अनिर्वचनीय है–

जग में सब जान्यौ परै अरु सब कहै कहाइ।
पै जगदीस रु प्रेम यह दोऊ अकथ लखाइ।

प्रेमियों या भक्तों के लिए यह प्रेम-भक्ति अत्यन्त सरल और कमल की भांति कोमल है, परन्तु अन्य लोगों के लिए टेढ़ी और खड्ग की धार की भांति कठिन है–

कमल तंतु सों हीन अरु कठिन खड्ग की धार।
अति सूधौ टेढ़ौ बहुरि, प्रेम पथ अनिवार।

भक्ति के प्रकार

भगवान की महिमा के श्रवण, कीर्तन आदि से उत्पन्न प्रेम के दो प्रकार हैं–शुद्ध और अशुद्ध। अशुद्ध प्रेम या भक्ति वह है जिसका कारण स्वार्थ (कामना) हो। शुद्ध प्रेम स्वाभाविक प्रेम है। वह नि:स्वार्थ होता है। भक्त के मन में किसी प्रकार की कोई कामना नहीं होती। वह केवल भक्ति के लिए भक्ति करता है। ऐसा प्रेम सदैव एक रस और रसमय रहता है–

स्त्रवन कीरतन दरसनहिं जो उपजत सोइ प्रेम।
सुद्धासुद्ध बिभेद तें, द्वैबिध ताके नेम।
स्वारथमूल असुद्ध त्यौं सुद्ध स्वभाव नुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियौ जाहि को तूल।
रसमय स्वाभाविक, बिना स्वारथ अचल महान
सदा एकरस सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान।
बिन गुन जोबन रूप घन, बिन स्वारथ हित हानि।
सुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि।
इक अंगी बिनु कारनहि, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान।

ग्यारह आसक्तियाँ

नारद ने अपने भक्तिसूत्र में परम प्रेम की ग्यारह आसक्तियां बतलाई हैं। वे इस प्रकार हैं–

गुणमाहात्म्यसक्ति,
रूपासक्ति,
पूजासक्ति,
स्मरणसक्ति,
दास्यासक्ति,
सख्यासक्ति,
कांतासक्ति,
वात्सल्यासक्ति,

आत्मनिवेदनासक्ति,
तन्मयतासक्ति, और
परमविरहासक्ति।

जहां पर भक्त भगवान के गुणों और महिमा को विशेष रूप से दृष्टि में रखकर उनके प्रति परमानुरक्ति का निवेदन करता है, वहां पर गुणमाहात्म्यासक्ति होती है। उदाहरणार्थ–

गावें गुनी गनिका गंधरब्ब औ सारद सेष सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत।

जहां आसक्त भक्त की दृष्टि भगवान के रमणीय रूप पर विशेष रूप से केंद्रित रहती है–वहां रूपासक्ति होती है। निम्नांकित पद्य में रसखान की इसी भावना का चित्रण हुआ है–

गुंज गरें सर मोरपखा अरु चाल गयंद की मो मन भावै।
साँवरो नंदकुमार सबै ब्रजमंडली में ब्रजराज कहावै।
साज समाज सबै सिरताज औ छाज की बात नहीं कहि आवै।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै।

स्मरणासक्ति की किंचित अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में देखी जा सकती हैं–

संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन धर्म बढ़ावैं।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत।

प्रेम के कवि होने के कारण रसखान ने दास्याभक्ति और सख्याभक्ति को गौरव नहीं दिया है। अधोलिखित पंक्ति में दास्य की झलक मात्र दृष्टिगोचर होती है–

मो कर नीकी करैं करनी जु पै कुँज-कुटीरन देहु बुहारन।

रसखान के कृष्ण और गोपियों के प्रेमवर्णन में गोपियों की कांतासक्ति की अभिव्यंजना मिलती है। गोपियों के वियोग-वर्णन में उनकी परमविरहासक्ति भी अभिव्यक्त हुई है। लेकिन उन पद्यों को भक्तिकाव्य की अपेक्षा शृंगार-काव्य मानना ही समीचीन है। भक्ति के विधि-विधान में आस्था न रखने के कारण पूजा-अर्चना से बिलकुल दूर थे। अतएव उनके काव्य में पूजासक्ति का सर्वथा अभाव है।

बालक-रूप भगवान की भक्ति रामभक्ति-शाखा और कृष्ण-भक्ति-शाखा दोनों ही काव्य-धाराओं में प्रतिष्ठित हुई है। वल्लभाचार्य के प्रभाव से कृष्ण-भक्ति शाखा में इसका विशेष आदर हुआ।

रसखान ने भी कृष्ण की बाल लीला का चित्रण किया है। भगवान के प्रति आत्मनिवेदन, शरणागति या प्रपत्ति को भक्तों ने भक्ति का आवश्यक तत्त्व माना है। निम्नांकित सवैये में रसखान ने भगवान की महिमा का स्मरण करते हुए अपने मन को निश्चिंत हो जाने का आश्वासन दिया है।

द्रौपदी और गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी, प्रहलाद कौं कैसे हरयौ दु:ख भारो।
काहे कौं सोच करै रसखानि कहा करिहै रबिनंद बिचारो।
ताखन जाखन राखियै माखन-चाखन हारो सो राखनहारौ।

कृष्ण में गोपियों की तन्मयता तो प्रसिद्ध ही है। यह विशेषता रसखान की गोपियों में भी पाई जाती है। अन्यत्र भी कवि ने कहा है–

ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जो पै
चित्त दै न कीनी प्रीति पीत पटवारे सों।

पंचधा भक्ति

रूप गोस्वामी ने 'हरिभक्तिरसामृत सिंधु' में भक्तिरस के दो भेद बतलाए हैं–

मुख्य भक्तिरस और
गौण भक्तिरस।

इस विभाजन का आधार रतिभाव की मुख्यता या गौणता है। मुख्य भक्तिरस के पांच प्रकार हैं-

शांत-शांत भक्तिरस का स्थायी भाव शमी (तत्वज्ञानी) भक्तों की शांतिरति है।

प्रीत-प्रीत भक्तिरस का स्थायी भाव संभ्रम प्रीति या गौरवप्रीति है। इसी को सामान्यत: दास्य भक्ति कहा जाता है।

प्रेयान–प्रेयान भक्तिरस का स्थायी भाव सख्य है।

वत्सल-वत्सल भक्तिरस का स्थायी भाव वात्सल्य है।

मधुर–मधुर भक्तिरस का स्थायी भाव मधुरा रति है।

इस प्रकार रस-दृष्टि से भक्ति के पांच भेद हुए-

शांत,
दास्य,
सख्य,
वात्सल्य और
मधुर।

रसखान के काव्य में शांति रति की व्यंजना नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि रसखान स्वयं प्रेममार्गी थे, ज्ञानमार्गी नहीं। उन्होंने अपने लौकिक प्रेम को भगवान की ओर उन्मुख कर दिया था। वे शास्त्रज्ञ ज्ञानी नहीं थे और अपनी कविता उन्होंने संभवतः ज्ञानियों के लिए लिखी भी नहीं थी। प्रेमी कवि की प्रेम-प्रधान रचना में तत्वज्ञान-प्रधान भक्ति का निरूपण संभव नहीं था। दास्य और सख्य के प्रति भी उन्होंने कोई रुचि नहीं दिखलाई। दास्य में प्रेमी भक्त और प्रेमपात्र भगवान के बीच दूरी बनी रहती है। सख्य में भी उतनी तन्मयता नहीं आ पाती जितनी की माधुर्य में हो सकती है। वात्सल्य-भक्ति का वर्णन भी रसखान ने अधिक नहीं किया है। निम्नलिखित पद्यों में बालरूप कृष्ण के प्रति रसखान के वात्सल्यपूर्ण भक्तिभाव की हृदयहारिणी अभिव्यक्ति हुई है–

आजु गई हुती भोर ही हौं रसखानि रई वहि नंद के भौनहिं।
वाको जियो जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहिं।
तेल लगाइ लगाइ कै अंजन भौंहें बनाइ बनाइ डिठौनहिं।
डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौं चुचकारत छौनहिं।।
धूरि भरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अंगना पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी।
वा छवि कों रसखानि बिलोकत वारत काम कलानिज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सौं लै गयो माखन रोटी।

अंतिम पंक्ति में 'हरि' शब्द के प्रयोग से कृष्ण का ईश्वरत्व और कवि की भक्ति-भावना ध्वनित होती है। रसखान माधुर्य के कवि हैं। वे युवावस्था में भी प्रेमी थे और विषय-विरक्त होने पर भी प्रेमी ही रहे। अंतर केवल इतना ही हुआ कि प्रेम का आलंबन बदल गया। सामान्य लड़के और रमणी के प्रति बहने वाली प्रेम-धारा भगवान् के प्रति अविछिन्न रूप से प्रवाहित होने लगी। उनकी इस प्रेम-प्रवृत्ति का प्रभाव यह हुआ कि उन्होंने श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का ही वर्णन अधिक किया। गोचारण, चीरहरण, कुंजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, बनलीला, गोरसलीला आदि के प्रसंगों में गोपी-कृष्ण

की विविध शृंगारिक लीलाओं का हृदय-स्पर्शी चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत प्रसंग में एक प्रश्न विचारणीय है—क्या जिन पद्यों में रसखान ने कृष्ण और गोपियों की मधुर प्रेम-लीलाओं का निरूपण किया है उनमें भक्तिरस है? यह ठीक है कि कृष्ण को स्वयं भगवान् या भगवान् का अवतार माना गया है। यह भी सही है कि भक्तों ने गोपियों को जीवों का प्रतीक माना है। परन्तु उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है। अन्यत्र चाहे जो कुछ भी माना गया हो, रस के विषय में उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता। कविता-विशेष में पात्रों का जो चित्रण हुआ है, वही प्रमाण है। रस-निर्णय की कसौटी भावुक है। प्रश्न यह है कि रसखान द्वारा किए गए इन लीला वर्णनों को पढ़कर भावुक के मन में वासना-रूप से विद्यमान कौन-सा स्थायी भाव विकसित होकर उसे रसानुभूति कराता है। इन कविताओं के सामान्य पाठक का अनुभव यह है कि वह स्थायी भाव कामरति है। भक्तों की बात भिन्न है। वे तो राम, कृष्ण आदि की किसी भी लीला का वर्णन पढ़कर या सुनकर भक्ति-भाव से गदगद हो जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि जहां अभिधा या व्यंजना के द्वारा कृष्ण के ईश्वरत्व का संकेत नहीं है, वहां भक्ति का अस्तित्व मानना अनुचित है। रसखान के भ्रमरगीत से उद्धृत निम्नांकित पद्य पर विचार कीजिए-

जोग सिखावत आवत है वह, कौन कहावत, को है, कहाँ को।
जानति हैं बर नागर है पर नेकहु भेद लह्यो नहीं ह्यां को।
जानति ना हम और कछू मुख देखि जियैं नित नंद लला को।
जात नहीं रसखानि हमें तजि, राखनहारो है मोरपखा को।

इन पंक्तियों में गोपियों की कृष्ण-विषयक विरहासक्ति की व्यंजना है। यहाँ पर गोपियों का चित्रण सामान्य वियोगिनी नायिकाओं के रूप में और नंदलाल का चित्रण सामान्य नायक के रूप में ही किया गया है। भक्त और भगवान के स्वरूप का कोई संकेत नहीं है। अतएव यहाँ पर विप्रलंभ शृंगार है। 'प्रेमलक्षणा भक्ति को माधुर्य भक्ति और शृंगार रस को उज्ज्वल रस की संज्ञा देकर चैतन्य संप्रदाय के विद्वान् पंडित श्री रूप गोस्वामी ने अपने भक्ति-ग्रंथों में शृंगार और प्रेम के लौकिक विषय-वासनामय रूप का उन्नयन किया था। शृंगार और प्रेम के सांसारिक चित्रों के माध्यम से उन्होंने हरिभक्ति का उज्ज्वल एवं दिव्य रूप खड़ा करके शृंगार की भोग-वृत्ति का भली-भांति परिमार्जन भी किया। भक्ति के क्षेत्र में जिस शृंगार को चैतन्य-संप्रदाय के आचार्यों ने अवतरित किया था उसका कृष्ण भक्तिपरक परवर्ती सभी वैष्णव संप्रदायों पर

गहरा प्रभाव पड़ा और उनमें शृंगारमयी शैली से रसोपासना प्रवर्तित हो गई। रसिकाचार्यों ने प्रेम और शृंगार का वर्णन करके जो शैली ग्रहण की उसमें प्रेम के प्रतिपादन में काम, मनोज, भार, मनसिज, मन्मथ आदि शब्दों का प्रचुर परिमाण में प्रयोग हुआ। साथ ही भाव वस्तु के लिए भी स्थूल काम-चेष्टाओं का सांगोपांग वर्णन किया गया। उस वर्णन के पीछे भक्तों की चाहे जैसी पावन भावना रही हो किंतु सामान्य पाठक को उसमें काम-वासना की गंध आना स्वाभाविक है। ' रसखान किसी रसोपासक संप्रदाय में दीक्षित नहीं हुए थे। फिर भी अपनी स्वाभाविक और स्वच्छंद प्रवृत्ति के अनुसार उन्होंने उपर्युक्त उज्ज्वल रस (जिसे रसिक भक्त माधुर्य-भक्ति कहते हैं) की विषद निबंधना की हे। इस विषय में उनका सिद्धांत भी स्पष्ट है। पूर्वोक्त पांच प्रकार के भक्तिरसों में से वत्सल, प्रेयान् और मधुर का उन्होंने आदर के साथ स्मरण किया है। वात्सल्य और सख्य भावों की तुलना में माधुर्य-भाव को उन्होंने सर्वोपरि माना है–

जदपि जसोदा नंद अरु ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग मैं प्रेम कौं गोपी भई अनन्य।

तन्मयता की पराकाष्ठा माधुर्य-भाव में ही संभव है। इसी रतिभाव से कृष्ण के साथ मिलकर एक हो जाने में वास्तविक आनंद है, जीवन फल की प्राप्ति है–

मोहनी मोहन सों रसखानि अचानक भेंट भई बन माहीं।
जेठ की घाम भई सुखधाम अनंद ही अंग ही अंग समाहीं।
जीवन को फल पायौ भटू रसबातन केलि सों तोरत नाहीं।
कान्ह को हाथ कंधा पर है मुख ऊपर मोर किरीट की छाहीं।
निम्नलिखित सवैये में भक्ति-भावना का स्पष्ट संकेत है–
मोर के चंदन मौर बन्यौ दिन दूलह है अली नंद को नंदन।
श्री बृषभानुसुता दुलही दिन जोरी बनी बिधना सुखकंदन।
आवै कह्यौ न कछू रसखानि री दोऊ फंदे छबि प्रेम के फंदन।
जाहि बिलोकें सबै सुख पावत वे ब्रज जीवन हैं दुःख दंदन।

नवधाभक्ति

भागवत पुराण में वर्णित नवधा भक्ति का भक्त समाज में बड़ा आदर है और भक्त कवियों ने उसका बहुधा उल्लेख किया है। ये नौ विधाएं हैं–श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

प्रथम तीन विधाओं में भगवान के नाम और गुण की प्रधानता है।

चौथी, पांचवीं और छठी में उनके रूप का वैशिष्ट्य है।

अंतिम तीन विधाओं में भक्त के भाव पर बल दिया गया है। रसखान ने इन विधाओं का कहीं भी व्यवस्थित निरूपण नहीं किया। वे मर्यादामार्गी भक्त नहीं थे। अतः उनकी रचनाओं में इन सभी विधाओं के अन्वेषण का प्रयास निष्फल होगा। उनकी कविता में कुछ विधाओं की ही सांकेतिक अभिव्यक्ति हुई है। श्रवण, कीर्तन और स्मरण सभी भक्तों को मान्य हैं और रसखान ने भी उनका उल्लेख किया है–

स्रवन कीरतन दरसनहिं जो उपजत सोइ प्रेम।
बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
जान वही उन आन के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावैं।
नेकु हियें जिहि आनत ही जड़ मूढ़ महा रसखानि कहावैं।

'पादसेवन' का तात्पर्य है–भगवान की परिचर्या, मूर्ति का दर्शन, मंदिर गमन, तीर्थयात्रा आदि। उन्होंने तीर्थयात्रा का उपहास किया है-

तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।

मंदिर में झाड़ू लगाना आदि भी पादसेवन ही है। कुंज-कुटीरों को बुहारने की कामना में इसी विधा का आभास मिलता है।

मो कर नीकी करैं करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन। रसखान की अर्चन, वंदन, दास्य और सख्य भक्तियों में प्रवृत्ति नहीं हुए और 'आत्मनिवेदन' तो भगवान के प्रति आत्मसमर्पण, शरणागति या प्रपत्ति है। भक्त भगवान को सर्वशक्तिमान और कृपालु मानता है। वह पूरी आस्था के साथ अपने को भगवान की शरण में समर्पित कर देता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि भगवान के संरक्षण में रहने पर उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता और भगवान उसके समस्त दुःखों का अवश्य ही अंत कर देंगे-

कहा करै रसखानि को कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है माखन चाखन हार।
देस बिदेस के देखे नरेसन रीझ की कोऊ न बूझ करैगौ।
तातें तिन्हैं तजि जानि गिरयौं गुन, सौगुन औगुन गांठि परैगौ।
बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है स्याम जु नैसुक ढार ढरैगौ।
लाड़लो छैल वही तौ अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगौ।

मुक्ति और भक्ति के साधन

विचारक आचार्यों ने भवसागर को पार करने के अनेक साधन बतलाए हैं–कर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान, उपासना, भक्ति, प्रपत्ति आदि। रसखान के निम्नलिखित दोहे से निष्कर्ष निकलता है कि उनके अनुसार भव-संतरन के चार उपाय हैं–कर्म, ज्ञान, उपासना और प्रेमलक्षणा भक्ति–

ज्ञान कर्म रु उपासना, सब अहमिति को मूल।
दृढ़ निस्चय नहिं होत बिन किए प्रेम अनुकूल।

वैराग्य, जप, तप, संयम, प्राणायाम, तीर्थयात्रा आदि इन्हीं साधनों को भक्ति का साधन कहा गया है। रसखान का कहना है कि भक्ति को छोड़कर अन्य सभी साधन अमोघ नहीं हैं। संसार को पार करने का एक मात्र अमोघ साधन भगवान श्रीकृष्ण के प्रति परम प्रेम ही है–

कहा रसखानि सुखसंपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को।
कहा साधे पंचानल, कहा सोए बीच नल,
कहा जीति लाए राज सिंधु-आरपार को।
जप बार-बार तप संजम बयार-ब्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हौ नहीं प्यार, नहीं सेयौ दरबार, चित
चाह्यौ न निहारयौ जो पै नंद के कुमार को।

भक्ति साधन और साध्य दोनों ही है। उसके लिए अन्य साधन अनिवार्य नहीं हैं। वे केवल सहायक हो सकते हैं। भक्ति की श्रवण आदि नौ विधाएँ वस्तुत: साधन भक्ति के नौ वर्ग हैं। रसखान ने श्रवण आदि कतिपय विधाओं को प्रेमलक्षणा भक्ति का साधन माना है। उनकी चर्चा पहले की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त, भक्ति के सहायक तत्त्वों के रूप में उन्होंने कुछ अन्य साधनों का भी उल्लेख किया है। निम्नोद्धृत सवैये में उन्होंने इस बात का स्पष्ट संकेत किया है कि मन और वाणी के संयम, सच्चाई के साथ किए गए व्रत-नियम पालन, सबके प्रति सद्भाव, सात्विक, सत्संग और अनन्य भाव से भगवान और उनकी भक्ति प्राप्त हो सकती है–

सुनियै सबकी कहियै न कछु रहियै इमि या मन-बागर मैं।
करियै ब्रत-नेम सचाई लियें, जिन तें तरियै मन-सागर मैं।

मिलियै सब सौं दुरभाव बिना, रहियै सतसंग उजागर मैं।
रसखानि गुबिंदहिं यौं भजियै जिमि नागरि को चित गागर मैं।

मुख्य प्रतिपाद्य–भगवान कृष्ण और उनकी लीला

भगवान की तीन प्रमुख विभूतियां मानी गई हैं–शक्ति, शील और सौन्दर्य। जिस प्रकार तुलसीदास ने राम के शील और शक्ति का विस्तृत निरूपण किया है वैसा किसी भी कृष्ण भक्त कवि ने कृष्ण की इन विभूतियों का नहीं किया। उन्होंने कृष्ण की सौंदर्य-विभूतियों के विविध रूपों को ही अपने वर्णन का मुख्य विषय बनाया। रसखान का मन भी सौंदर्य की ही परिधि में घूमता रहा। उन्होंने कुछ गिने-चुने स्थलों पर ही कृष्ण की शक्ति और शील का चित्रण किया है। कालिया दमन और कुवलया वध के प्रसंग इसी प्रकार के स्थल हैं। कालियादमन के प्रसंग में रसखान ने व्याजस्तुति के सहारे कृष्ण के शक्ति-संपन्न रूप का बड़ा मनोहर चित्र अंकित किया है–

लोग कहैं ब्रज के रसखानि अनंदित नन्द जसोमति जू पर।
छोहरा आजु नयो जनम्यौ तुम सो कोऊ भाग भरयौ नहिं भू पर।
वारि के दाम संवार करौ अपने अपचाल कुचाल ललू पर।
नाचत रावरो लाला गुपाल सो काल सौ ब्याल-कपाल के ऊपर।

कुवलया-वध का वीरसपूर्ण वर्णन भी ओजस्वी शब्दों में किया गया है–

कंस के क्रोध की फैलि रही सिगरे ब्रजमंडन मांझ फुकार सी।
आइ गए कछनी कछिकै तबहीं नट-नागर नन्दकुमार सी।
द्वरद को रद खैंचि लियौं रसखानि हिये महि लाइ बिचार सी।
लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कलंक तमाल तें कीरति-डार सी।

कृष्ण के शील की व्यंजना रसखान ने उनके गुण-कथन के सन्दर्भों में की है–

(क) गोतम गेहिनी कैसी तेरी, प्रहलाद को कैसैं हरयौ दु:ख भारो।
(ख) बाँसुरीवारो बड़ों रिझवार है स्याम जु नैसुक ढार ढरैगो।
(ग) लड़लो छैव वही तो अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगो।

भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम का वर्णन सभी सगुण भक्तों का प्रिय विषय रहा है। रसखान ने इनकी चर्चा बहुत कम की है। प्रेममार्गी रुचि के कारण उनका मन कृष्ण के रूप और लीला के चित्रण में अधिक रमा है। दार्शनिक दृष्टि से उन्होंने कृष्ण के स्वरूप का विशद निरूपण नहीं किया। केवल कुछ पद्यों में उसका आभास दिया है। वेदांती लोग जिसे ब्रह्म

कहते हैं, जो ब्रह्मा का सेव्य है, सदाशिव जिसका ध्यान किया करते हैं, वही कृष्ण हैं। जो वैष्णवों का विष्णु है, जो योगियों की साधना का साध्य है, वही ब्रजचन्द कृष्ण हैं। ब्रह्मा, विष्णु और कृष्ण में स्वरूपत: कोई भेद नहीं हैं, केवल नाम की उपाधि भिन्न है। यशोदा आदि भक्तजनों को अपनी लीला का आनन्द देने के लिए ही भगवान कृष्ण अवतार धारण करते हैं–

वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत हैं रैन-दिन,
सदासिव सदा ही धरत ध्यान गाढ़े हैं।
वेई विष्नु जाके काज मानी मूढ़ राजा रंक,
जोगी जती ह्वै के सीत सह्यौ अंग डाढ़े हैं।
कोई ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्रानन के,
जाके अभिलाष लाख लाख भाँति बाढ़े हैं।
जसुधा के आगे बसुधा के मान-मोचन ये,
तामरस लोचन खरोचन कौं ठाढ़े हैं।

भगवान के नाम और गुण असंख्य हैं। वे अनादि, अनंत, अखंड और अछेद्य हैं। वे भक्त-प्रेम के वशीभूत हैं। उनकी भक्तवत्सलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे इतने महिमाशाली और शक्तिमान होकर भी अहीरों की छोकरियों को प्रसन्न करने के लिए छछिया भर छाछ पर नाच नाचने को प्रस्तुत करते हैं–

नाम अनंत गनंत ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।
सेष गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावै।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।
नारद से सुक ब्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।

सौंदर्य-प्रेमी और लीला-गायक रसखान को भगवान के नाम-जप में कोई विशेष आकर्षण नहीं प्रतीत हुआ। इसलिए उन्होंने एकाध स्थलों पर नाम-कीर्तन का उल्लेख किया है यथा–

जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।

भगवान कृष्ण के गुणों का गान भी रसखान ने बारंबार किया है–

बेन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैंन सों सानी।
गावैं गुनी गनिका गंधरब्बा औ सारद सेष सबै गुन गावत।
द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियौ सो न निहारो।

रसखान का मन मुख्य रूप से श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं के गान में ही रमा हैं। कृष्ण भक्त कवियों के द्वारा सामान्यत: वर्णित लीलाओं का उन्होंने भी वर्णन किया है। इन लीलाओं में बाललीला, गोचारण, चीरहरण, कुंजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, वनलाल, गोरसलीला, प्रेमलीला, सुरतलीला, होली आदि प्रमुख हैं। रसखानि के द्वारा किए गए कृष्णलीला वर्णन के एकाध पद्य ही ऐसे हैं जिन्हें पढ़कर सामान्य पाठक को भक्तिरस की अनुभूति होती है। यह ठीक है परन्तु भक्तजनों का अनुभव इससे भिन्न है। उनके लिए श्रीकृष्ण सदैव भगवान ही हैं—वे चाहे जिस वेष में सामने आएं, चाहे जो लीला करें। जिस प्रकार प्रेमी को अपना प्रेम पात्र प्रत्येक दशा में प्रिय होता है—वह चाहे जो भी वेष-भूषा धारण करे, उसी प्रकार भक्तो को भगवान भगवान के ही रूप में ही आराध्य रूप में दिखाई देता है—वह चाहे जो भी रूप धारण करे। उसकी प्रत्येक लीला भक्त को अपने इष्टदेव की ही लीला दिखाई देती है। रसखान ने कृष्ण की लीला का गान इसी भक्त-दृष्टि से किया है। कृष्ण की माखनचोरी, पनघटलीला, रासलीला, सुरतलीला, आदि का वर्णन करते समय रसखान के हृदय में यह बात कभी तिरोहित नहीं हुई कि वे अपने आराध्य भगवान कृष्ण की लीला का वर्णन कर रहे हैं।

रसखान ने कृष्ण के धाम का भी वर्णन किया है। इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने पौराणिक भक्तों की भांति बैकुण्ठ या क्षीरसागर का कोई वर्णन नहीं किया। उन्होंने कृष्ण की अवतार-लीला के धाम ब्रज का ही वर्णन किया है।

5

छीतस्वामी

छीतस्वामी वल्लभ संप्रदाय (पुष्टिमार्ग) के आठ कवियों (अष्टछाप कवि) में एक थे। जिन्होने भगवान श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का अपने पदों में वर्णन किया। इनका जन्म 1515 ई0 में हुआ था। ये मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। घर में जजमानी और पंडागिरी होती थी। प्रसिद्ध है कि ये बीरबल के पुरोहित थे। पंडा होने के कारण पहले ये बड़े अक्खड़ और उद्दण्ड थे।

छीतस्वामी श्री गोकुलनाथ जी (प्रसिद्ध पुष्टिमार्ग के आचार्य ज. सं. 1608 वि.) कथित दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता के अनुसार अष्टछाप के भक्त कवियों में सुगायक एवं गुरु गोविंद में तनिक भी अंतर न माननेवाले 'श्रीमद्वल्लभाचार्य' (सं. 1535 वि.) के द्वितीय पुत्र गो. श्री विट्ठलनाथ जी (ज.सं.–1535 वि.) के शिष्य थे। जन्म अनुमानतः सं.–1572 वि. के आस-पास 'मथुरा' यत्र सन्निहिओ हरि–(श्रीमद्भागवत–10.1.28) में माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण के एक संपन्न परिवार में हुआ था। उनके माता पिता का नाम बहुत खोज करने के बाद आज तक नहीं जाना जा सका है। 'स्वामी' पदवी उनको गो. विट्ठलनाथ जी ने दी, जो आज तक आपके वंशजों के साथ जुड़ती हुई चली आ रही है।

छीतस्वामी का इतवृत्त भक्तमाल जैसे भक्त-गुण-गायक ग्रंथों में नहीं मिलता। श्री गोकुलनाथकृत वार्ता, उसकी 'हरिराय जी (सं.–1647 वि.) कृत टीका–'भावप्रकाश', प्राणनाथ कवि (समय-अज्ञात) कृत 'संप्रदाय कल्पद्रुम',

एवं श्रीनाथभट्ट (समय-अज्ञात) कृत संस्कृत वार्ता-मणि-माला, आदि ग्रंथों में ही मिलता है।

छीतस्वामी एक अच्छे सुकवि, निपुण संगीतज्ञ तथा गुणग्राही व्यक्ति थे। 'संप्रदायकल्पद्रुम' के अनुसार यह समय (सं. 1592 वि.) मथुरापुरी से नातिदूर नए बसे 'गोकुल' ग्राम में गोस्वामी श्री विठ्ठलनाथ के समृद्ध रूप में विराजने का तथा स्वपुष्टिसंप्रदाय के नाना लोकरंजक रूपों और सुंदर सिद्धांतों को सजाने सँवारने का था। श्री गोस्वामी जी के प्रति अनेक अतिरंजक बातें मथुरा में सुनकर और उनकी परीक्षा लेने जैसी मनोवृत्ति बनाकर एक दिन छीतस्वामी अपने दो-चार साथियों को लेकर, जिन्हें 'वार्ता' में गुंडा कहा गया है, गोकुल पहुँचे ओर साथियों को बाहर ही बैठाकर अकेले खोटा रुपया तथा थोथा नारियल ले वहाँ गए जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी अपने ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी (जं.सं. 1597 वि.) के साथ स्वसंप्रदाय संबंधी अंतरग बातें कर रहे थे। छीतू गोस्वामी जी गिरिधर जी का दर्शनीय भव्य स्वरूप देखकर स्तब्ध रह गए और मन में सोचने लगे, 'बड़ी भूल की जो आपकी परीक्षा लेने के बहाने मसखरी करने यहाँ आया। अरे, ये साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम हैं-'जेई तेई, तेई, एई कछु न संदेह' (छीतस्वामी कृत एक पद का अंश), अतः मुझे धिक्कार है। अरे इन्हीं से तू कुटिलता करने आया? छीतू चौबे इस प्रकार मन ही मन पछतावा कर रही रहे थे कि एकाएक गोस्वामी जी ने इन्हें बाहर दरवाजे के पास खड़ा देखकर बिना किसी पूर्व जान पहचान के कहा 'अरे, छीतस्वामी जी बाहर क्यों खड़े हो, भीतर आओ, बहुत दिनन में दीखे।' छीतू चौबे, इस प्रकार अपना मानसहित नाम सुनकर और भी द्रवित हुए तथा तत्क्षण भीतर जाकर दोनों हाथ जोड़कर तथा साष्टांग प्रणाम कर अर्ज की, 'जैराज, मोई सरन में लेउ, मैं मन में भौत कुटिलता लैके यहाँ आयो हो सो सब आपके दरसनन ते भाजि गई। अब मैं आपके हाथ बिकानों हां जो चाँहों से करौ। गोस्वामी जी ने 'छीतू' जी के मुख से ये निष्कपट भावभरे बचन सुने और अपने प्रति उनका यह प्रेमभाव देख उनसे कहा-'अच्छौ, अच्छौ, आगे (भीतर) आऔ-। तथा उठाकर उन्हें गले लगाया, पास में बड़े प्रेम से उन्हें बैठाया। तत्पश्चात् अपने पूजित भगवद्विग्रह के पास ले जाकर उन्हें नाममंत्र सुनायौ।' नाममंत्र सुनते ही 'छीतू' जी ने तत्क्षण एक 'पद' की रचना कर बड़े गद्गद् स्वरों में गाया, जो इस प्रकार है –

भई अब गिरिधर सों पैहचान।
कपट रूप धरि छल के आयौ, परषोत्तम नहिं जान॥
छोटौ बड़ौ कछू नहिं देख्यौ, छाइ रह्यौ अभियान।
'छीतस्वामि' देखत अपनायौ, विट्ठल कृपा निधान॥

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (सं. 2) में लिखा हुआ है कि एक बार छीतस्वामी अपने यजमान महाराज बीरबल (ज.सं.–1632, या 1640 वि.) के पास अपनी 'बरसौढ़ी' (सालाना चंदा) लेने आगरा गए और उनके यहाँ ठहरे। प्रातः समय सोकर जब वे उठे श्रीवल्लभाचार्य का नामस्मरण किया। बाद में देवगंधार राग में स्वरचित एक पद गाया जिसके बोल हैं–'श्रीवल्लभ राजकुमार। नहिं मिति नाथ कहाँ लों बरनों, अगनित गुन-गन-सार, 'छीतस्वामि' गिरिधर श्री विट्ठल प्रघट कृष्ण औतार।' महाराज बीरबल ने पद सुना और आपकी गायकी और संगीतपरक ज्ञान की मधुर अभिव्यक्ति पर मुग्ध हो गए, पर मन में डरे कि 'कहूँ याहि देसाधिपति (अकबर) सुन लेवें तौ अपने मन में का कहैगौ।' इधर छीतस्वामी शैया से उठ श्री यमुनास्नान करने चले गए। वहाँ से लौटकर आए, पास के श्री ठाकुर जी (मूर्ति) को जगाया, सेवा की और भोगसामग्री सिद्ध कर प्रभु को समर्पण की। बाद में फिर स्वरचित एक कीर्तन पद गाने लगे। बीरबल को यह सब आपका कृत्य अच्छा न लगा। अतः उन्होंने बड़े ही नम्रभाव से छीतस्वामी से कहा–'आपने सबेरें औरु या समैं जो पद गाए, उन्हें (यदि) म्लेच्छ देसाधिपति सुनि लेइ और माते पूंछै तो मैं कहा उत्तर देंउगो, सो ऐसै न करौ तौ अच्छौ है।' यै सुनिकें छीतस्वामी बीरबल से बाले–'राजा, देसाधिपति म्लेच्छ सुनैगो औरु पूंछैगौ जब की बात या समैं तुम पूंछ रहे हो, सो तुम्हहूँ म्लेच्छ जैसे, ही मोहि दीख रहे हौ, सो बरु आज ते मैं तेरौ मुख नाहीं देखौंगो।' छीतस्वामी बीरबल से यह कह और अपना सामान बांध तथा सालाना बरखासन छोड़ मथुरा वापिस चले आए फिर गोकुल गोस्वामी जी के पास चले गए। उधर बादशाह अकबर ने किसी प्रकार यह सब–छीतस्वामी का आना और अपना सालना बरखासन छोड़कर चले जाना, सुना। उन्होंने बीरबल को पास बुलाया ओर समझाते हुए कहा–'जो बीरबल, तेरे पिरोहित छीतस्वामी ने तोते कहू झूठी बात तौ कही नहीं, तुमकों वौ बात भूलि गई जब मैं और तू एक 'नवाड़ा (नाव–किश्ती) में बैठे जमना की सैर कर रहे थे। जब नबाड़ा गोकुल पोंहचौ देखौ गो. विठ्ठलनाथजी 'ठकुरानी घाट' पै जमना किनारें बैठे आँख मीचें ध्यान में बैठे

हैं। मेरे उनके प्रति आदाब बजा लेने पर उन्होंने मुझे आँख मींचे ही मींचे आशीर्वाद दिया था। उस समय मेरे पास एक 'मणि' विशेष थी, जो रोजाना पाँच तोला सोना उगला करती थी। मैंने उसे गुसाई जी की भेंट कर दी और उन्होंने बिना देखे उस मणि को उसी जमना में डाल दिया मुझे उनकी यह हरकत अच्छी न लगी और उसे वापिस माँगी। मेरी विशेष जिद पर उन्होंने जमना में हाथ डाल कर वैसी ही हूबहू मुठ्ठी भर मणियाँ निकालकर मेरे सामने रख दीं और कहा 'तिहारी जो मणि हाई वाइ पैहाचॉन कें लै लेउ।' उस समय मैं और तुम दोनों उनका यह हैरतअंगेज करिश्मा देखकर बुत बन गए और सोचने लगे कि ऐसा काम सिवा 'खुदा' के और कोई नहीं कर सकता। सो बीरबल वे बात तू भूल गया? और अपने सच्चे पिरोहित से ऐसा कहा। गुसाई जी साच्छात खुदा हैं, इसमें जरा भी फर्क नहीं। यह काम तुझसे अच्छा नहीं हुआ, जो अपने सच्चे खुदापरस्त पिरोहित को वापिस लौटाल दिया–इत्यादि.....। 'उधर छीतस्वामी, गोस्वामी जी को गोकुल में न पाकर उनके दर्शनार्थ गोवर्धन चले गए और वहाँ उनके दर्शन किए।' गोस्वामी जी ने उनके आगरें जाइवे के आइवें के समाचर पूँछे, वहाँ कौ सब हाल छीतस्वामी ते सुनिकें आप बड़े प्रसन्न भए। वा समें आपके पास लाहौर के कछु वैष्णव हूँ बैठे हैं सो उनते आपने कही–'जो तुम्ह पास छीतस्वामी को पठवत हो, सो तुम इनकी भली भाँति सें बिदा करियो। कछु दिन पाछें अपने छीतस्वामी कें एक पत्र दैकें सों बिदा करियो। कछु दिन पाछें अपने छीतस्वामी कों एक पत्र दैकें कह्यौ–जौ तुम्ह या पत्र कां लैकें लाहौर जाउ, वहाँ के वैष्णव तुम्हारी बिदा भलिभाँति सें करेंगे। ' यह सुनकर छीतस्वामी ने श्री गुसाई जी से विनती की–'जैराज, मैं आपको सेवक (शिष्य) कहू भीख माँगने के लियें भयौ नाहीं। बीरबल के पास मेरी बरसौढ़ी' (सालाना चंदा) बँधी ही, सो म्हौं तोर के लातो हो। जब का 'बहिर्मुख' ने म्लेच्छ कौ सौ आचरन कियो में उठिकें चलौ आयै, अब में इन चरनँन कों छोरि के कें कहूं न जाँउगो। वैष्णव हैं कें वैष्णवनँ के घर घर भीख माँगन डोलों, सो जै, अब मोते यै न होइगी।' श्री गो. विठ्ठलनाथ जी उनकी ये निष्कपट वैष्णवों जैसी सच्चे मन की बात सुनकर अति प्रसन्न हुए और पास में बैठे दूसरे वैष्णवन सों कह्यों 'वैष्णवन कौ धरम ऐसों ई होई हैं वाई ऐसौई क्रनों चाहिएँ. ..।' बाद में आपने लाहौरवाले वैष्णवन को लिखा–'छीतस्वामी जी, लाहौर आइ नाहीं सकत हैं, तुम्हीं उन्हें वरष वरष सौ सौ रुपैया उनकों भज दियौ

करियो।' जो उन वैष्णवन नें आपकौ ऐसौ पत्र पढ़िकें छीतस्वामी को वरष सौ रुपैय भेज दियौ करते हैं (द्वितीय वार्ता)। अस्तु इन वार्ता उल्लेखों के करण छीतस्वामी जी के जीवन के साथ कितनी ही ऐतिहासिक उलझनें समय के विपरीत लिपट जाती हैं, जैसे 'गो. श्री विट्ठलनाथ जी का गोकुल निवास संप्रदाय में 'मधुसूदन' कृत 'बल्लभवंसावली' के अनुसार सं.–1628 वि. कहा सुना जाता है। यह समय गोस्वामी जी के सातवें लालजी (बेटे) घनश्याम जी के उत्पन्न होने का है, अर्थात् आपके प्रथम पुत्र गिरिधर जी, के जन्म (सं. 1597 वि.) के बाद श्रीगोकुल पधारने और बसने का है। संप्रदाय में मान्यता है कि श्री छीतस्वामी गो. विठ्ठल जी की शरण, 'संप्रदायकल्पद्रुम' के अनुसार सं. 1592 वि. में आए। अष्टछाप के अन्य कवि–'कृष्णदास अधिकारी नंददास, चतुर्भुजदास' से पहले...। इसके बाद है। वह सोरों (शूकर क्षेत्र) में प्राप्त आपके वशंज–'खाव जी' की सं.–1628 वि. वली तीर्थयात्रा से प्रारंभ होकर खावजी के पुत्र वृंदावनदास जी (सं. 1660 वि.) तत्पुत्र–'यदुनंदन, तपोधन तथा हरिशरण 'जिन्हें सं. 1696 वि. में जयपुर राज्य की एक गद्दी विशेष 'शेखावत शाखा' के अज्ञातनामा राजा से दानस्वरूप 20 बीघा जमीन, छीतस्वामी जी के सेव्य ठाकुर 'श्याम जी' का नया मंदिर तथा मंदिर के पासवाला 'श्याम घाट' का बनवाया जाना तथा जयपुर (राजस्थान) से 16 कोस दूर 'ताय पीर' गाँव के पास 'बाण गंगा' के किनारे 'धलैरा' गाँव का मिलना, जिसका सुव्यवस्थित पट्टा (प्रमाणपत्र) सं. 1702 वि. में मिलाथा। छीतस्वामी जी का निधन श्री गिरिधर जी 130 ववनामृत कृति के अनुसार सं. 1642 वि. में 'गास्वी विठ्ठलनाथ जी के निधन के समाचार सुनकर 'गोवर्धन' में यह पद–'बिहरन, सातों रूप धरे' गाते गाते हुआ था। आपके यश-शरीर की गाथा वहाँ संप्रदाय में 'भगवल्लीला रूप से दिन में 'सुबल सखा' रात्रिसेवा में ललिता जी सहचरी 'पद्ममा' तदनुकूल वर्ण् 'कमल समान, शक्ति–'दुमाले के शृंगार युक्त विठ्ठलनाथ जी की मूर्ति, जो इस समय 'श्रीनाथ द्वारा (उदयपुर) में विराजमान है, की संध्या आरती में अंगस्थान–'कटि' कुंज माणिक, ऋतुवर्षा, मनोरथ हिंडोला 'लीलावाल' और स्थान 'बिलकुंड' कहा सुना जाता है।

छीतस्वामी कृत कुछ विशेष साहित्य नहीं मिलता। पुष्टि संप्रदाय में नित्य उत्सव विशेष पर गाए जानेवाले उनके हस्तलिखित एवं मुद्रित संग्रहग्रंथ–'नित्यकीर्तन', 'वर्षोत्सव' तथा 'वसंतधमार' पदविशेष मिलते हैं।

कीर्तन रचनाओं में संगीत सौंदर्य, ताल और लय एवं स्वरों का एक रागनिष्ठ मधुर मिश्रण देखा जा सकता है।

छीतस्वामी जी का एक पद

भोग शृंगार यशोदा मैया, श्री विट्ठलनाथ के हाथ को भावें।
नीके न्हवाय शृंगार करत हैं, आछी रुचि सों मोही पाग बंधावें ।।
तातें सदा हों उहां ही रहत हो, तू दधि माखन दूध छिपावें।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल, निरख नयन त्रय ताप नसावें ।।

6

संत रविदास

सतगुरु रविदास जी भारत के उन चुनिंदा महापुरुषों में से एक हैं जिन्होंने अपने रूहानी वचनों से सारे संसार को एकता, भाईचारा पर जोर दिया। आप की अनूप महिमा को देख कई राजे और रानियां आपकी शरण में आए। आप ने जीवन भर समाज में फैली कुरीति जैसे जात पात के अंत के लिए काम किया।

आप के सेवक आप को 'सतगुरु', 'जगतगुरू' आदि नामों से सत्कार करते हैं। आप ने अपनी दया दृष्टि से करोड़ों लोगों का उद्धार किया जैसे मीराबाईसिकंदर लोधी राजा, पीपा राजा नागरम। गुरुवर रैदास जी माँ गंगा के परम भक्त थे कहा जाता है कि जब रैदास भक्त की शादी हुई तो उन्होंने माँ गंगा को निमंत्रण भेजा था और जिस व्यक्ति को निमंत्रण सौंपा उससे कहा कि अगर मां गंगा स्वयं अपने हाथो से मेरा निमंत्रण स्वीकार करे तो देना, वो व्यक्ति जैसे ही गंगा के किनारे गया और कहा मां गंगा भक्त रैदास ने निमंत्रण भेजा है तो मां गंगा ने स्वयं अपना हाथ निकाला और निमंत्रण लिए....।

जीवन

गुरू रविदास (रैदास) का जन्म काशी में माघ पूर्णिमा दिन रविवार को संवत 1398 को हुआ था। उनके जन्म के बारे में एक दोहा प्रचलित है। चौदह से तैंतीस कि माघ सुदी पन्दरास। दुखियों के कल्याण हित प्रगटे श्री रविदास।

उनके पिता राहू तथा माता का नाम करमा था। उनकी पत्नी का नाम लोना बताया जाता है। रैदास ने साधु-सन्तों की संगति से पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। वे जूते बनाने का काम किया करते थे और ये उनका व्यवसाय था और उन्होंने अपना काम पूरी लगन तथा परिश्रम से करते थे और समय से काम को पूरा करने पर बहुत ध्यान देते थे।

उनकी समयानुपालन की प्रवृति तथा मधुर व्यवहार के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले लोग भी बहुत प्रसन्न रहते थे। प्रारम्भ से ही रविदास जी बहुत परोपकारी तथा दयालु थे और दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव बन गया था। साधु-सन्तों की सहायता करने में उनको विशेष आनन्द मिलता था। वे उन्हें प्रायः मूल्य लिये बिना जूते भेंट कर दिया करते थे। उनके स्वभाव के कारण उनके माता-पिता उनसे अप्रसन्न रहते थे। कुछ समय बाद उन्होंने रविदास तथा उनकी पत्नी को अपने घर से भगा दिया। रविदास पड़ोस में ही अपने लिए एक अलग आवास बनाकर तत्परता से अपने व्यवसाय का काम करते थे और शेष समय ईश्वर-भजन तथा साधु-सन्तों के सत्संग में व्यतीत करते थे।

स्वभाव

उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से समय तथा वचन के पालन सम्बन्धी उनके गुणों का पता चलता है। एक बार एक पर्व के अवसर पर पड़ोस के लोग गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे। रैदास के शिष्यों में से एक ने उनसे भी चलने का आग्रह किया तो वे बोले, गंगा-स्नान के लिए मैं अवश्य चलता किन्तु गंगा स्नान के लिए जाने पर मन यहाँ लगा रहेगा तो पुण्य कैसे प्राप्त होगा ? मन जो काम करने के लिए अन्तःकरण से तैयार हो वही काम करना उचित है। मन सही है तो इसे कठौते के जल में ही गंगास्नान का पुण्य प्राप्त हो सकता है। कहा जाता है कि इस प्रकार के व्यवहार के बाद से ही कहावत प्रचलित हो गयी कि–मन चंगा तो कठौती में गंगा।

रैदास ने ऊँच-नीच की भावना तथा ईश्वर-भक्ति के नाम पर किये जाने वाले विवाद को सारहीन तथा निरर्थक बताया और सबको परस्पर मिलजुल कर प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश दिया।

वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते थे और उन्हें भाव-विभोर होकर सुनाते थे। उनका विश्वास था कि राम, कृष्ण, करीम, राघव

आदि सब एक ही परमेश्वर के विविध नाम हैं। वेद, कुरान, पुराण आदि ग्रन्थों में एक ही परमेश्वर का गुणगान किया गया है।

कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा। वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।

चारो वेद के करे खंडौती। जन रैदास करे दंडौती।।

उनका विश्वास था कि ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार, परहित-भावना तथा सद्व्यवहार का पालन करना अत्यावश्यक है। अभिमान त्याग कर दूसरों के साथ व्यवहार करने और विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का विकास करने पर उन्होंने बहुत बल दिया। अपने एक भजन में उन्होंने कहा है-

कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै। तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।

उनके विचारों का आशय यही है कि ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। अभिमान शून्य रहकर काम करने वाला व्यक्ति जीवन में सफल रहता है जैसे कि विशालकाय हाथी शक्कर के कणों को चुनने में असमर्थ रहता है जबकि लघु शरीर की पिपीलिका (चींटी) इन कणों को सरलतापूर्वक चुन लेती है। इसी प्रकार अभिमान तथा बड़प्पन का भाव त्याग कर विनम्रतापूर्वक आचरण करने वाला मनुष्य ही ईश्वर का भक्त हो सकता है।

रैदास की वाणी भक्ति की सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना तथा मानव प्रेम से ओत-प्रोत होती थी। इसलिए उसका श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता था। उनके भजनों तथा उपदेशों से लोगों को ऐसी शिक्षा मिलती थी जिससे उनकी शंकाओं का सन्तोषजनक समाधान हो जाता था और लोग स्वत: उनके अनुयायी बन जाते थे।

उनकी वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि समाज के सभी वर्गों के लोग उनके प्रति श्रद्धालु बन गये। कहा जाता है कि मीराबाई उनकी भक्ति-भावना से बहुत प्रभावित हुई और उनकी शिष्या बन गयी थीं।

वर्णाश्रम अभिमान तजि, पद रज बंदहिजासु की। सन्देह-ग्रन्थि खण्डन-निपन, बानि विमुल रैदास की।।

आज भी सन्त रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान नहीं होता है। विचारों की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित

कार्य तथा सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान बनाने में सहायक होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण सन्त रैदास को अपने समय के समाज में अत्यधिक सम्मान मिला और इसी कारण आज भी लोग इन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

रैदास के 40 पद गुरु ग्रन्थ साहब में मिलते हैं जिसका सम्पादन गुरु अर्जुन सिंह देव ने 16 वीं सदी में किया था।

सतगुरु रविदास जी के पद

अब कैसे छूटे राम नाम रट लागी।
प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी॥
प्रभु जी, तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती॥
प्रभु जी, तुम मोती, हम धागा जैसे सोनहिं मिलत सोहागा॥
प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै 'रैदासा'॥

दोहे

जाति-जाति में जाति हैं, जो केतन के पात।
रैदास मनुष ना जुड़ सके जब तक जाति न जात॥
मन चंगा तो कठौती में गंगा।
बाभन कहत वेद के जाये, पढ़त लिखत कछु समुझ न आवत।
मन ही पूजा मन ही धूप, मन ही सेऊँ सहज सरूप।

संत रैदास की सामजिक चेतना

कुलभूषण कवि रविदास उन महान सन्तों में अग्रणी थे जिन्होने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने में महत्वपूर्ण योगदान किया । इनकी रचनाओं की विशेषता लोक–वाणी का अद्भूत प्रयोग रही है जिससे जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव पड़ता है। मधुर एवं सहज संत रैदास की वाणी ज्ञानाश्रयी होते हुए भी ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाओं के मध्य सेतु की तरह है। प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न धर्मो तथा मतों के अनुयायी निवास करते रहे है। संत रैदास के समय में देश में मुस्लिम शासन था। हिन्दू पराजित जाति थी। दोनो धर्मो के कुलीन वर्ग एक दूसरे से नफरत करते थे। जहां मुल्ला अपने धर्म को श्रैष्ठ बताकर सभी को इस्लाम धर्म मानने

को मजबूर कर रहे थे। वहीं पंडित पुराहित अपने को श्रेष्ठ सिद्व कर रहे थे। इस खींचतान से समाज निरन्तर पतन की ओर बढ़ रहा था।

प्रस्तावना

संत रविदास द्वारा रचित "रविदास के पद" नारद भक्ति सूत्र रविदास की बानी आदि संग्रह भक्तिकाल की अनमोल कृतियों में गिनी जाती है । स्वामी रामानंद के ग्रंथ के आधार पर संत रविदास का जीवनकाल संवत 1417 से 1543 है। उन्होने यह 126 वर्ष का दीर्घकालिन जीवन अपनी अटूट योग और साधना के बल पर जीया।

संत रविदास जी की जो बात मुझे सबसे अच्छी लगी वह यह कि उन्होने अपनी आजीविका कमाते–2 ही अपना दर्शन किया। संत का जीवन व्यतीत किया और उन्होने भिक्षा का सहारा नहीं लिया। संत रविदास ने मथुरा, प्रयाग, वृन्दावन व हरिद्वार आदि धार्मिक एवं पवित्र स्थानों की यात्राएं की। उन्होने लोगों से सच्ची भक्ति करने का संदेश दिया।

संत रैदास ने ऐसे समाज की परिकल्पना की थी जिसमें कोई उंच नीच, भेद भाव, राग द्वेष न हो, सभी बराबर हो, सामाजिक कुरीतियां ना हों। भारतीय समाज निर्माता बाबा भीम राव अम्बेडकर पर उनकी विचार धारा का गहरा प्रभाव था। अपने जीवन में संघर्ष करने की प्रेरणा उन्होने संत रैदास से ही पाई थी तथा उनके आदर्श सामाजिक समता तथा प्रजातांत्रिक समाजवाद की कल्पना को भारतीय संविधान में स्वीकार करने की कोशिश भी की। रैदास ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना करते हैं जिसमें धर्म के नाम पर ब्राहांडबर व धार्मिक कुरीतियां न हो, जहां जाति पाति का भेदभाव न हो। सभी बराबर हो, उंच नीच की प्रथा समाप्त हो जाए।

संत रविदास ने मनुष्य की मूर्खता पर व्यंग्य कसते हुए कहा कि वह नर और तुच्छ हीरे को पाने की आशा करता है लेकिन जो हरि हरि का सौदा है। उसे प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता है।

संत रैदास के समय में देश में मुस्लिम शासन था। हिन्दू पराजित जाति थी। दोनो धर्मो के कुलीन वर्ग एक दूसरे से नफरत करते थे। जातिवादी व्यवस्था के पोषकों के कुटिल कुचक्र को पहचान कर, उन्होने मानव एकता की स्थापना पर बल दिया। उनका मानना था कि जातिवादी व्यवस्था को दूर किए बगैर देश व समाज की उन्नति असंभव है। ये यह बात अच्छे से जानते

थे कि जब तक हिन्दू और मुसलमान एक नहीं होंगे तब तक समाज में शांति एवं स्थिरता नहीं आऐगी।

संत रैदास के समय में समाज में आर्थिक विषमता काफी बढ़ी हुई थी। इस समस्या के निवारण के लिये उन्होने श्रम को महत्व देकर आत्मनिर्भरता की बात कही।

कूलभूषण रविदास ने सामाजिक धार्मिक एवं राष्ट्रीय एकता के लिये भी समाज में जागृति पैदा की । उन्होने कहा कि तीर्थो की यात्रा किये बिना भी हम अपने हृदय में सच्चे ईश्वर को उतार सकते हैं। उनके जीवन की छोटी–2 घटनाओं से समय तथा वचन के पालन सम्बंधी गुणों का पता चलता है। एक बार पर्व के अवसर पर पडोस के लोग गंगा स्नान के लिये जा रहे थे। रैदास के शिष्यों में से एक ने उनसे भी चलने का आग्रह किया तो वे बोले गंगा स्नान के लिये मैं अवश्य चलत, किंतु एक व्यक्ति को जूते बनाकर आज ही देने का मैने वचन दे रखा है, यदि मैं उसे आज जूते नहीं दे सका तो वचन भंग होगा। गंगा स्नान के लिये जाने पर मन यहां लगा रहेगा तो पुण्य कैसे प्राप्त होगा ? मन जो काम करने के लिये अन्तः करण से तैयार हो वही काम करना उचित है। मन सही है तो इसे कठौते के जल में ही गंगा स्नान का पुण्य प्राप्त हो सकता है। कहा जाता है कि इस प्रकार के व्यवहार के बाद से ही कहावत प्रचलित हो गयी कि मन चंगा तो कठौती में गंगा।

कृष्ण, करीम, राम, हरि, राघव जब लग एक न पेखा । वेद, कतेब कुरान, पुरानन सहज एक नहीं देखा। उनका विश्वास था कि ईश्वर की भक्ति के लिये सदाचार, परहित–भावना तथा सद्व्यवहार का पालन करना और विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का विकास करने पर उन्होने बहुत बल दिया। संत रविदास अपने काम के प्रति हमेशा समर्पित रहते थे। वे बाहरी आडम्बरों विश्वास नहीं करते थे। धीरे–धीरे संत रविदास की भक्ति की चर्चा दूर–2 तक फैल गई और उनके भक्ति के भजन व ज्ञान की महिमा सुनने में लोग जुटने लगे और उन्हें अपना आदर्श एवं गुरू मानने लगे।

समाज में फैली जाति–पाति, छुआछात, धर्म संप्रदाय वर्ण विशेष जैसी भंयकर बुराईयों को जड़ से समाप्त करने के लिये संत रविदास ने अनेक मधुर और भक्तिमय रसीली कालजयी रचनाओं का निर्माण किया और समाज के उद्धार के लिये समर्पित कर दिया। संत रविदास ने अपनी वाणी एवं सदुपदेशों के जरिये समाज में एक नई चेतना का संचार किया। उन्होने लोगों

को पाखण्ड एवं अंधविश्वास छोड़कर सच्चाई के पथ पर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया।

संत रैदास ने लोगो को समझाया कि तीर्थो की यात्रा किये बिना भी हम अपने हृदय में सच्चे ईश्वर को उतार सकते है। इस प्रकार कुलभूषण रविदास ने समाज को हर बुराई, कुरीति, पाखण्ड और अंधविश्वास से मुक्ति दिलाने के लिये ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया और असंख्य मधुर भक्तिमयी कालजयी रचनाएं की। उनकी भक्ति तप, साधना व सच्चे ज्ञान ने समाज को नई दिशा दी। उनका विश्वास था कि ईश्वर की भक्ति के लिये सदाचार, परहित भावना तथा सद्व्यवहार का पालन अत्यावश्यक है। अभिमान त्याग कर दूसरों के साथ व्यवहार करने और विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का विकास करने पर उन्होने बहुत बल दिया। उनके विचारों का आशय यही है, कि ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। अभिमान शून्य रहकर काम करने वाला व्यक्ति जीवन में सफल रहता है। जैसे कि विशालकाल हाथी शक्कर के कणों के चुनने में असमर्थ रहता है। जबकि लघु शरीर के कणों के शरीर की पिपीलिका (चीटी) इन को सरलतापूर्वक चुन लेती है। इसी प्रकार अभिमान तथा बड़प्पन का भाव त्याग कर विनम्रतापूर्वक आचरण करने वाला मनुष्य ही ईश्वर का भक्त हो जाता है।

रैदास की वाणी सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना तथा मानव प्रेम के ओत–प्रोत होती थी। इसलिये उसका श्रौताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उनके भजनों तथा उपदेशों से लोगो को ऐसी शिक्षा मिलती थी जिससे उनकी शंकाओ का सन्तोषजनक समाधान हो जाता था और स्वत: उनके अनुयायी बन जाते थे। उनकी वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि समाज के सभी वर्गो के लोग उनके प्रति श्रदालु बन गये कहा जाता है कि मीराबाई उनकी भक्ति भावना से प्रभावित हुई और उनकी शिष्य बन गई थी। वणश्रिम, अभिमान तजि, पद, रज, बरहिजासु की संदेह–ग्रंथी खण्डन–निपन, बानि बिमुल रैदास की प्रमुख रचनाएं है।

संत रैदास के इसी श्रम के दर्शन को समझ कर महात्मा गाँधी ने अपने '' रामराज्य '' के लिये पारंपरिक हथकरधा तथा कुटीर उद्योगों को महत्व दिया था। संत रैदास साम्यवादी, समाजवादी व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि पराधीनता से देश समाज और व्यक्ति की सोच संकुचित हो जाती है और संकुचित विचारधारा वाला व्यक्ति बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय

की अवधारणा को व्यावहारिक रूप प्रदान नहीं कर सकता। उनके मन में समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति गहरा आक्रोश था।

आज भी संत रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उन्होने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान नहीं होता है। विचारो की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित कार्य तथा सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान बनाने में सहायक होते है। इन्हीं गुणों के कारण संत रैदास अपने समय के समाज में अत्याधिक सम्मान लिया और इसी कारण आज भी लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

रैदास जी को संत कहकर उनके आदर्श को मोड़ने की चेष्टा की गई है। रविदास को संत कहकर उनके क्रांतिकारी विचारो का अंत किया गया है।

संत रैदास अपने समय से बहुत आगे थे क्रांतिकारी वैचारिक अपधारणा, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना तथा युगबोध की सार्थक अभिव्यक्ति के कारण उनका विचार दर्शन लगभग 600 वर्ष बाद आज भी प्रासंगिक है।

भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है और कहा भी क्यों न जाये आखिर कबीर, रैदास, सूर, तुलसी इसी युग की तो देन हैं जिन्होंने भगवान के सगुण और निर्गुण रूेको हर व्यक्ति तक पहुँचाया। यही वो दौर था जब इन संत कवियों ने मानवीय मूल्यों की पक्षधरता की और जन-जन में भक्ति का संचार किया। इन्हीं में से एक थे संत रविदास। संत रविदास तो संत कबीर के समकालीन व गुरूभाई माने जाते हैं।

वैसे तो संत रविदास के जन्म की प्रामाणिक तिथि को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं लेकिन अधिकतर विद्वान सन् 1398 में माघ शुक्ल पूर्णिमा को उनकी जन्म तिथि मानते हैं। कुछ विद्वान इस तिथि को सन् 1388 की तिथि बताते हैं। लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं है कि हर साल माघ पूर्णिमा को संत रविदास की जयंती मनाई जाती है। कहते हैं माघ मास की पूर्णिमा को जब रविदास जी ने जन्म लिया वह रविवार का दिन था जिसके कारण इनका नाम रविदास रखा गया। रविदास चर्मकार कुल में पैदा हुए थे इस कारण आजीविका के लिये भी इन्होंने अपने पैतृक कार्य में ही मन लगाया। ये जूते इतनी लगन और मेहनत से बनाते मानों स्वयं ईश्वर के लिये बना रहे हों। उस दौर के संतों की खास बात यही थी कि वे घर बार और सामाजिक जिम्मेदारियों से मुँह मोड़े बिना ही सहज

भक्ति की और अग्रसर हुए और अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए ही भक्ति का मार्ग अपनाया।

मन चंगा कठौति में गंगा

संत रविदास की अपने काम के प्रति प्रतिबद्धता इस उदाहरण से समझी जा सकती है एक बार की बात है कि रविदास अपने काम में लीन थे कि उनसे किसी ने गंगा स्नान के लिये साथ चलने का आग्रह किया। संत जी ने कहा कि मुझे किसी को जूते बनाकर देने हैं यदि आपके साथ चला तो समय पर काम पूरा नहीं होगा और मेरा वचन झूठा पड़ जायेगा। और फिर मन सच्चा हो तो कठौति में भी गंगा होती है आप ही जायें मुझे फुर्सत नहीं। मान्यता है कि यहीं से यह कहावत जन्मी कि मन चंगा तो कठौति में गंगा।

सामाजिक भेदभाव का विरोध

संत रविदास ने अपने दोहों व पदों के माध्यम से समाज में जागरूकता लाने का प्रयास भी किया। सही मायनों में देखा जाये तो मानवतावादी मूल्यों की नींव संत रविदास ने रखी। वे समाज में फैली जातिगत ऊंच-नीच के धुर विरोधी थे और कहते थे कि सभी एक ईश्वर की संतान हैं जन्म से कोई भी जात लेकर पैदा नहीं होता। इतना ही नहीं वे एक ऐसे समाज की कल्पना भी करते हैं जहां किसी भी प्रकार का लोभ, लालच, दुख, दरिद्रता, भेदभाव नहीं हो।

संत रविदास और उनसे जुड़े चमत्कार

संत रविदास का जीवन हालांकि बहुत ही सरल सीधा रहा है लेकिन उनके जीवन से जुड़े कई प्रसंग ऐसे भी बताये जाते हैं जो किसी न किसी चमत्कार से जुड़े हों। कुछ चमत्कार इस प्रकार हैं-

उनके द्वारा पत्थर की मूर्ति को गंगा में छोड़ने पर उस मूर्ति का गंगा में तैरना

एक साधु द्वारा पारस पत्थर दिये जाने पर उसे इस्तेमाल न करना

अपनी कठौति से गंगा जल की धारा प्रवाहित होना

कठौति के जल से कुष्ठ रोग दूर होना

रविदास जी द्वारा एक मित्र सेठ को गंगा जी को दान देने के लिये दी गई राशि स्वयं गंगा मैया द्वारा स्वीकार करना

गंगा मैया द्वारा दूसरा कंगन लेना

उनके तन से जनेऊ निकलना

ये चमत्कार तो हो सकता है चमत्कार ही हों और रविदास जी के जीवन से इनका कोई संबंध न भी हो लेकिन उनकी भक्ति साधना और ईश्वर के प्रति आसक्ति को कोई नहीं नकार सकता बल्कि उन्हें तो स्वयं संत कबीरदास ने संतन में रविदास कहकर उच्च दर्जा दिया है। संत रविदास जी का यह पद तो आपने जरूर सुना होगा।

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी।
जाकी अंग-अंग वास समानी।।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

ऐसे बहुत सारे पद गुरु ग्रंथ साहब में शामिल हैं। आज भी अपने पदों से संत रविदास हमें राह दिखाते हैं।

7

स्वामी हरिदास

स्वामी हरिदास भक्त कवि, शास्त्रीय संगीतकार तथा कृष्णोपासक सखी संप्रदाय के प्रवर्तक थे, जिसे 'हरिदासी संप्रदाय' भी कहते हैं। इन्हें ललिता सखी का अवतार माना जाता है। इनकी छाप रसिक है। इनके जन्म स्थान और गुरु के विषय में कई मत प्रचलित हैं। इनका जन्म समय कुछ ज्ञात नहीं है। हरिदास स्वामी वैष्णव भक्त थे तथा उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन इनके शिष्य थे। सम्राट अकबर इनके दर्शन करने वृंदावन गए थे। 'केलिमाल' में इनके सौ से अधिक पद संग्रहित हैं। इनकी वाणी सरस और भावुक है। ये प्रेमी भक्त थे।

जीवन परिचय

श्री बांकेबिहारीजी महाराज को वृन्दावन में प्रकट करने वाले स्वामी हरिदासजी का जन्म विक्रम सम्वत् 1535 में भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी (श्री राधाष्टमी) के ब्रह्म मुहूर्त में हुआ था। आपके पिता श्री आशुधीर जी अपने उपास्य श्रीराधा-माधव की प्रेरणा से पत्नी गंगादेवी के साथ अनेक तीर्थों की यात्रा करने के पश्चात् अलीगढ जनपद की कोल तहसील में आकर एक गांव में बस गए। हरिदास जी का व्यक्तित्व बड़ा ही विलक्षण था। वे बचपन से ही एकान्त-प्रिय थे। उन्हें अनासक्त भाव से भगवद्-भजन में लीन रहने से बड़ा आनंद मिलता था। हरिदासजी का कण्ठ बड़ा मधुर था और उनमें

संगीत की अपूर्व प्रतिभा थी। धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। उनका गांव उनके नाम से विख्यात हो गया। हरिदास जी को उनके पिता ने यज्ञोपवीत-संस्कार के उपरान्त वैष्णवी दीक्षा प्रदान की। युवा होने पर माता-पिता ने उनका विवाह हरिमति नामक परम सौंदर्यमयी एवं सद्‌गुणी कन्या से कर दिया, किंतु स्वामी हरिदास जी की आसक्ति तो अपने श्यामा-कुंजबिहारी के अतिरिक्त अन्य किसी में थी ही नहीं। उन्हें गृहस्थ जीवन से विमुख देखकर उनकी पतिव्रता पत्नी ने उनकी साधना में विघ्न उपस्थित न करने के उद्देश्य से योगाग्नि के माध्यम से अपना शरीर त्याग दिया और उनका तेज स्वामी हरिदास के चरणों में लीन हो गया।

वृन्दावन प्रस्थान

विक्रम सम्वत् 1560 में पच्चीस वर्ष की अवस्था में हरिदास वृन्दावन पहुंचे। वहां उन्होंने निधिवन को अपनी तपोस्थली बनाया। हरिदास जी निधिवन में सदा श्यामा-कुंजबिहारी के ध्यान तथा उनके भजन में तल्लीन रहते थे। स्वामीजी ने प्रिया-प्रियतम की युगल छवि श्री बांकेबिहारीजी महाराज के रूप में प्रतिष्ठित की। हरिदासजी के ये ठाकुर आज असंख्य भक्तों के इष्टदेव हैं। वैष्णव स्वामी हरिदास को श्रीराधा का अवतार मानते हैं। श्यामा-कुंजबिहारी के नित्य विहार का मुख्य आधार संगीत है। उनके रास-विलास से अनेक राग-रागनियां उत्पन्न होती हैं। ललिता संगीत की अधिष्ठात्री मानी गई हैं। ललितावतार स्वामी हरिदास संगीत के परम आचार्य थे। उनका संगीत उनके अपने आराध्य की उपासना को समर्पित था, किसी राजा-महाराजा को नहीं। बैजूबावरा और तानसेन जैसे विश्व-विख्यात संगीतज्ञ स्वामी जी के शिष्य थे। मुगल सम्राट अकबर उनका संगीत सुनने के लिए रूप बदलकर वृन्दावन आया था। विक्रम सम्वत 1630 में स्वामी हरिदास का निकुंजवास निधिवन में हुआ।

सखी-सम्प्रदाय

स्वामी जी ने एक नवीन पंथ सखी-सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके द्वारा निकुंजोपासना के रूप में श्यामा-कुंजबिहारी की उपासना-सेवा की पद्धति विकसित हुई, यह बड़ी विलक्षण है। निकुंजोपासना में जो सखी-भाव है, वह गोपी-भाव नहीं है। निकुंज-उपासक प्रभु से अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता, बल्कि उसके समस्त कार्य अपने आराध्य को सुख प्रदान करने हेतु होते हैं। श्री

निकुंजविहारी की प्रसन्नता और संतुष्टि उसके लिए सर्वोपरि होती है। राधाष्टमी के पावन पर्व में स्वामी हरिदास का पाटोत्सव (जन्मोत्सव) वृन्दावन में बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है। सायंकाल मंदिर से चाव की सवारी निधिवन में स्थित उनकी समाधि पर जाती है। ऐसा माना जाता है कि ललितावतार स्वामी हरिदास की जयंती पर उनके लाडिले ठाकुर बिहारीजी महाराज उन्हें बधाई देने श्रीनिधिवन पधारते हैं। देश के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ निधिवन में स्वामीजी की समाधि के समक्ष अपना संगीत प्रस्तुत करके उनका आशीर्वाद लेते हैं।

हरिदास सम्प्रदाय

वृन्दावन के आधुनिक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सम्प्रदायों में से एक उल्लेखनीय सम्प्रदाय है, हरिदास सम्प्रदाय जिसकी संस्थापना स्वामी हरिदास द्वारा हुई थी। वृन्दावनस्थ आधुनिक मन्दिरों में विशिष्ट एक प्रख्यात मन्दिर है, जो श्री बाँके बिहारी जी के मन्दिर के नाम से लोक विश्रुत है। यह गुंसाई जी तथा उनके वशधरों के आधिपत्य में है। इस वंश परम्परा के लोगों की संख्या 19 वीं सदी में लगभग 500 थी। श्रीकृष्ण को समर्पित यह मन्दिर हरिदासी संप्रदाय का मुख्यावास मात्र ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारत में यह एक मात्र मन्दिर है, जिस पर गोस्वामियों का एकाधिकार है। सामान्य किन्तु अत्यन्त सारभूत स्वरूप के लाल पत्थर से निर्मित इस विशद वर्गाकार मन्दिर का प्रमुख केन्द्रीय द्वार संगमरमर से बना हुआ है, जो अत्यन्त प्रभावशाली है। यह भवन निर्माण शिल्प का एक प्रसन्न आदर्श प्रस्तुत करता है। यह सभ्य संसार के ऐसे कतिपय स्थानों में से एक है, जहाँ भारतीय शिल्प मृत अतीत की परिश्रम साध्य प्रति कृति मात्र न होकर एक जीवन्त कला है, जो निरन्तर स्वत: ही विकास की प्रक्रिया में प्रबर्द्धमान है। गुसाइयों के वंशानुक्रमानुसार यह सम्पत्ति दो भागों में विभक्त हुई। उसका एक भाग स्वयं एक ब्रह्मचारी का था, किन्तु उसके भ्राता जगन्नाथ के मेघश्याम, मुरारीदास और गोपीनाथदास नामक तीन पुत्र थे, जिनमें से तीसरे नि:सन्तान दिवंगत हो गये। शेष दोनों भाई वर्त्तमान वंश परम्परा के पूर्वज थे। जैसा कि ऐसे प्रकरणों में सामान्यत: होता है दोनों परिवार परस्पर संघर्षरत रहने लगे। एकाधिक बार शान्तिभंग होने की गम्भीर स्थिति के निवारणार्थ शासन को कानून की सहायता लेने को विवश होना पड़ा। अपने पूर्वज की महानता के परे कतिपय गुंसाई ही सम्मान के अधिकारी होने का दावा कर सकते थे। या तो अपने वैदुष्य के कारण या अपनी नैतिकता की सटीकता के कारण, क्योंकि

उनमें से बहुसंख्यक पढ़ लिख नहीं सकते थे। सामान्यत: उसके दो दावेदार थे। प्रत्येक 'बट' के लिये एक-एक। ये थे गुसाई जगदीश और किशोर चन्द्र। सम्प्रदाय के साहित्य की संकीर्ण सीमाओं में ये दोनों ही पक्ष अच्छे पढ़े लिखे थे।

हरिदास के सन्दर्भ में नाभा जी के मूल भक्तमाल में निम्नोक्त छन्द है–

आशधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की।।
जुगल नाम सौं नैम जपत नित कुंज बिहारी।।
अविंलोकित रहैं केलि सखी सुख को अधिकारी।।
गान कला गंधर्व श्याम श्यामा को तोषें।।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषें।।
नृपति द्वार ठाड़े रहें दरशन आशा जासकी।।
आशधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की।।

इसके पश्चात् प्रियादास की टिप्पणिका या अनुपूरक इस प्रकार है–

श्री स्वामी हरिदास रास राशि को बषांनि सकै
रसिकता की छाप कोई जाप मधि पाई है।।
ल्यायौ कोऊ चोवा ताकौ अति मन भोवा वामै
डारयौ लै पुलनि यह खोवा हिय आइयै।।
जानि के सुजान कही लै दिषावौ लाल प्यारे
नैसिकु उघारे पट सुगन्ध बुड़ाइयै।।
पारस पषांन करि जल डरबाइ दियौ
कियौ तब शिष्य अंसैं नाना विधि गाइयै।।

अन्य तथ्य

कदाचित इसे सभी माने।गे कि इस विशिष्ट छन्द में शिष्य अपने गुरु से अधिक अस्पष्ट रहा है। भक्त सिंधु ने उक्त दोनों छन्दों का 211 पदों की कविता में विशदीकरण किया है तथा समस्त भ्रमों की कुंजी निम्नांकित विवरण में प्रदान की है-

कोल (अलीगढ़ का प्राचीन नाम) के समीपस्थ एक गाँव में, जो अब हरिदासपुर कहलाता है, एक सनाढ्य ब्राह्मण ब्रह्मधीर के जानधीर नामक एक सुपुत्र था। जिसके हृदय में गिरि धारण करने वाले श्रीकृष्ण के गिरधारी स्वरूप के प्रति विशेष समर्पण (भक्ति) भाव जाग्रत था और इस प्रकार उसने गोवर्धन

के पावन पर्वत की अनेक तीर्थ यात्रायें की थी। अन्ततः आशधीर ने वृन्दावन के समीप स्थित एक छोटे से गाँव राजपुर के गंगाधर ब्राह्मण की आत्मजा से विवाह किया, जिसने संवत 1441 विक्रमी के भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हरिदास को जन्म दिया। अपनी निपट शैशवावस्था से ही उसने अपनी भावी पवित्रता के संकेत दिये और अन्य बालकों के साथ खेलने के स्थान पर वह निरन्तर प्रार्थना और ध्यान में लगा रहता था। अपने माता पिता के अनुरोधों के परे उसने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया और 25 वर्ष की आयु में वृन्दावन के सामने यमुना के बायें किनारे स्थित एक प्राकृतिक झील मानसरोवर पर एक एकान्तिक कुटी में रहने लगा। हरिदास तदनन्तर वृन्दावनस्थ निधिवन में चले गये और यहाँ उन्होंने विट्ठलविपुल को औपचारिक रूप से अपना शिष्य बनाया, जो उनके स्वयं के मातुल थे। शीघ्रमेव हरिदास जी की ख्याति दूर दूर तक फैल गई और उनके अनेक दर्शनार्थियों में से दिल्ली से दयालदास नामक एक खत्री एक दिन आया, जिसे अनायास दार्शनिक का पत्थर प्राप्त हुआ, जो सम्पर्क में आई प्रत्येक वस्तु को सोने में रूपान्तरित कर देता था। उसने यह पत्थर एक महान् निधि के रूप में स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी ने वह यमुना में फेंक दिया। दाता के प्रवोधन को देखकर स्वामी जी उसे यमुना किनारे ले गये और उसे मुट्ठी भर रेती जल में से निकालने का आदेश दिया। जब उसने वैसा ही किया तो प्रत्येक कण उसी तरह की प्रतिकृति प्रतीत हुई, जो फेंक दिया गया था और जब परीक्षण किया तो वह उन्हीं गुणों से सम्पन्न पाया गया। तब खत्री की समझ में आया कि सन्तों को भौतिक सम्पदा की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन वे स्वयमेव परिपूर्ण होते हैं। तदनन्तर वह स्वामी हरिदास के शिष्यों में सम्मिलित हो गया।

यह सुनकर कि साधु को दार्शनिक का पत्थर भेंट किया गया है एक दिन जब स्वामी जी स्नान कर रहे थे, कुछ चोरों ने शालिग्राम को चुराने का अवसर पा लिया। उन्होंने सोचा कदाचित यही वह (पत्थर) हो। अपने उद्देश्य हेतु व्यर्थ जानकर उन्होंने (चोरों ने) उसे एक झाड़ी में फेंक दिया। जैसे ही सन्त उसकी खोज में उस स्थान से होकर निकले शालिग्राम की वाणी सुनाई दी कि मैं यहाँ हूँ। उसी समय से प्रत्येक प्रातःकाल किसी चमत्कारिक माध्यम से स्वामी जी को नित्य एक स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त होने लगी जिससे वे मन्दिर का भोग लगाते और जो बचता था, उससे वे अन्न क्रय करते, जिसे वे यमुना में मछलियों को और तट पर मोर और वानरों को खिलाते थे।

एक दिन एक कायस्थ ने एक सहस्त्र रुपये मूल्य के 'अतर' की बोतल भेंट की और यह देखकर जड़ीभूत हो गया कि स्वामी जी ने उपेक्षा भाव से उसे भूमि पर पटक दिया, जिससे बोतल टूट गई और बहुमूल्य 'अतर' सब नष्ट हो गया। परन्तु जब उसे मन्दिर ले जाया गया तो उसने पाया कि भेंट भगवान द्वारा स्वीकृत हो गई है, क्योंकि पूरा मन्दिर भवन इत्र की सुगन्धि से महक रहा था।

दिल्ली के सम्राट् कज्ञ एक बिगड़ा हुआ मूर्ख बेटा था, जो अपमानपूर्वक वहाँ से निकाल दिया गया था। अपनी घुमक्कड़ी में संयोगवश वह वृन्दावन आ निकला और वहाँ सड़क पर सो गया। उषाकाल में स्वामी जी जब निधिबन से स्नानार्थ जा रहे थे, तो उससे टकरा गये और उसकी कहानी सुनकर उसका तानसेन नाम रख दिया और मात्र अपनी इच्छा शक्ति के प्रयोग से उसे एक अप्रतिम संगीतज्ञ के रूप में परिवर्तित कर दिया। उसके दिल्ली लौटने पर सम्राट् उसकी विलक्षणता पर आश्चर्य चकित रह गया और उसने वृन्दावन यात्रा की तथा उस गुरु के दर्शन करने की ठान ली, जिससे उसने शिक्षा ग्रहण की थीं तदनुसार, जब वह आगरा आया, तो वह मथुरा चला गया तथा भतरौंद तक आधे मार्ग घोड़े पर और वहाँ से पैदल निधिबन तक गया। सन्त ने अपने पुराने शिष्य का गरिमापूर्वक स्वागत किया और उसके शाही सी को देखा भी नहीं, यद्यपि वह जानते थे कि वह कौन है। अन्ततः जब सम्राट् ने निरन्तर कुछ करने योग्य सेवा की अभ्यर्थना की तो उसे वह समीपस्थ बिहारी घाट ले गये, जो वर्त्तमान में ऐसा लग रहा था जैसे कि प्रत्येक सीढ़ी बहुमूल्य स्वर्ण जड़ित पत्थर की हो और एक सीढ़ी में कुछ कमी दिखाते हुए सम्राट् से कहा कि उसके स्थान पर दूसरी रखवा दें। यह कार्य महान् सम्राट् की भी शक्ति से परे था। सम्राट् ने पवित्र वानरों और मयूरों के पोषणार्थ छोटा सा अनुदान देकर तुष्टि पाई और वह प्रभूत सदुपदेश प्राप्त करके अपने मार्ग चला गया।

स्वामी हरिदास के जीवन में अन्य किसी घटना का उल्लेख अभिलिखित नहीं मिलता। उनके अनन्तर उनके उत्तराधिकारी उनके मातुल विट्ठल विपुल और उनके पश्चात् बिहारीदास हुए। बिहारीदास प्रेम उन्माद में इतने निमग्न हो गये कि मन्दिर के प्रशासनार्थ जगन्नाथ नामक एक पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण बुलाया गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके अनेक उत्तराधिकारी आते गये, जिसे लिखना अनावश्यक प्रतीत होता है।

ग्राउस के विचार

मेरे (ग्राउस) पास 680 पृष्ठों की एक छोटी पोथी है, जिसमें संस्थापक से लेकर इस हस्तलेख की तिथि संवत 1825 तक के समस्त महन्तों की तथा उनके लेखों की तालिका है। सूची यह है–

स्वामी हरिदास
विट्ठल विपुल
बिहारिनदास
नागरीदास
सरसदास
नवलदास
नरहरदास
रसिकदास तथा
ललितकिशोर (ललितमोहनीदास)

स्वामी हरिदास के शरीरान्त की तिथि मात्र संवत 1665 विक्रमी ठहरती है। उनकी रचनाएँ शैली में तुलसीदास की कविता से अधिक पूर्ववर्ती नहीं हैं, जिनका देहावसान संवत 1680 में हुआ था। अतः प्रत्येक दशा में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में ई. की सोलहवीं शती के अन्त और सत्रहवीं शती के आरम्भ में विद्यमान रहे। उपरिलिखित सूची में प्रत्येक महन्त अपने पूर्ववर्ती महन्त का शिष्य उल्लिखित है और प्रत्येक ने कुछ भक्ति कविताएँ लिखी, जिन्हें साखी, चौबोला या पद कहा जाता है। सर्वाधिक मात्रा में लिखने वाले लेखक बिहारिनदास हैं, जिनके पद 684 पृष्ठों का कलेवर भरते हैं। उनमें से अनेक पदों में अतिशयातिरेक में वे रहस्यात्मक भक्ति को अभिव्यक्त करते हैं, जो दिव्यभाव की अपेक्षा भौतिकता की द्योतक हैं। किन्तु निम्नोक्त उद्धरण सर्वथा पृथक् प्रकृति का है। यह स्वामी हरिदास के देहावसान की तिथि का अनुमोदन करने की दिशा में अधिक सहायक है, जो ऊपर निष्कर्षित है। क्योंकि इसमें सम्राट् अकबर और उसके प्रसिद्ध मित्र बीरबल की मृत्यु का नाम से उल्लेख है, जो सन् 1590 ई. में हुई थी।

राग गोरी

कहा गर्वे रे मृतक नर ॥
स्वान स्यार की खघन पांन तन अंठि चलत रे निलज निडर ॥

यहै अवधि जग विदित जग बांभन बड़े भये बीरबर ॥
मरत दूष्यौं हियौ न जियौ किसी न सहाइ अकबर ॥
स्वासन निकसत सुर असुर रषि गेंथि काल करतर ॥
इतहि न उतहि बीच ही भूल्यों है फिरत कौंन कौ थर ॥
सुखद सरन हरिचरन कमल भजि बादि फिरत भटकत घर धर ॥
श्री बिहारीदास हरिदास विपुलबल लटकि लग्यौ संग सर्वोपर।

संप्रदाय के संस्थापक की 'साधारण सिद्धान्त' और 'रास के पद' शीर्षक 41 पृष्ठों की केवल दो छोटी रचनाएँ हैं। पहली अपने मूल पाठ में नीचे उद्धृत की जाती है। मन्दिर के सभी भक्तों को इसका बहुलांश कंठस्थ है, यद्यपि निश्वयपूर्वक जान लिया गया कि उनमें से विरले ही इसके सामान्य अर्थ से आगे अधिक जानते हैं। किशोरचन्द्र जैसे बहुज्ञ पुजारी ने इसका अवलोकन किया और उसके कुछ अंशों के अर्थ किये। अन्य पंडितों का अभिमत लेने पर वे अर्थ अपर्याप्त पाये गये और विवशत: छोड़ने पड़े।

राग विभास

ज्यौंही ज्यौंही तुम राषत हौ त्यौंही त्यौंही रहियत है हों हरि।।
और तौ अचरचे पाय धरौं सु तौ कहौं कौन के पेंड भरि।।
जद्यपि हौं अपनौ भायौ कियौ चाहौं कैसे करि सकौं जो तु राखौ पकरि।।
हरिदास के स्वामी श्याम कुंज बिहारी
पिजरा के जनावर लौं तरफराय रहौ उड़िवे कौ कितौक करि।।1।।
काहूकौ बस नांहि तुम्हारी कृपा ते सब होय श्री बिहारी बिहारिन ।।
और मिथ्या प्रपंच काहे कौं भाषिये सो तौ है हारिनि।।
जाहि तुम सौं हित तासौं तुम हित करौ सब सुख कारनि ।।
हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी प्राँननि के आधारनि।।2।।
कबहूँ कबहूँ मन इत उत जातैं यातें अब कौन है अधिक सुष।।
बहुत भाँति नयत आंनि राष्यौ नाहितौ पावतौ दुष।।
कोटि कमलावन्य बिहारी तातै मुहा चुहीं सब सुष लियें रहत रुष।।
हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज बिहारी दिन देषत रहौ विचित्र मुष।।3।।
हरि भजि हरि भजि छांड़िन मान नर तन कौ।।
जिन बंछैरे जिन बंछैरे तिल तिल धनकौं ।।
अनमागैं आगैं आवैगौ ज्यौं पल लागैं पलकौं ।।
कहि हरिदास मीच ज्यौं आवै त्यौं धन आपुन कौ।।4।।

राग बिलावल

हे हरि मोसौं न बिगारन कौं तोसौं न संम्हारन कौं मोहि तांहि परी होड़।।
कौंन धौं जी तै कौंन धौं हारै परि बादी न छोड़ ।।
तुम्हारी मायाबाजी पसारी विचित्र मोहे मुनि काके भूले कोउ।।
कहि हरिदास हम जीते हारे तुम तहु न तोड़।।5।।
वंदे अषत्यार भला।।
चित न डुलाव आव समाधि भीतर न होहु अगला ।।
न फिर दर दर पदर पद न होहु अधला।।
कहि हरिदास करता किया सो हुवा सुमेर अचल चला।।6।।
हित तौ कीजै कमल नैन सों जा हित के आगैं और हित के लागै फीकौ।।
कै हित कीजैं साधु संगत सौं ज्यौं कलमषि जाय जीकौ।।
हरि कौ हित ऐसौ जैसौ रंग मजीठ।।
संसार हिंत असौ जैसौ रंग कसूम दिन दुती कौ।।
कहि हरिदास हित कीजै बिहारी सौं और निवाहू जी कौ।।7।।
तिनका बयार बस।।
ज्यौं भावै त्यौं उड़ाय ले जाय आपने रस ।।
ब्रह्म लोक शिवलोक और लोक अस।
कहे हरिदास विचार देषौ विना बिहारी नाहिं जस।।8।।
संसार समुद्र मनुष्य मीन नक्र मगर और जीब बहु बंदसि ।।
मन बयार प्रेरे स्नेह फंद फदसि ।।
लोभ पिंजरा लोभी मरजिया पदारथ चारि षंदषंदसि।।
कहि हरिदास तेई जीव पराभये जे गहि रहे चरन आनन्द नन्दसि।।9।।
हरि के नाम कौ आलस कित करत है रे काल फिरत सर सांधे ।।
बेर कुबेर कछू नहि जानत कढडौ फिरत है कांधे।।
हीरा बहुत जवाहिर सच्चे राँचे कहा भयौ हस्ती दर बाँधे ।।
कहि हरिदास महल में बनिता बनठाढ़ी भई।।
तव कछु न चलत जब आवत अन्त की आँधे।।10।।
देषौ इनि लोगन की लावनि।।
बूझत नाँहिं हरिचरनकमल कौं मिथ्या जन्म गवावनि
जब जमदूत आय घेरत हैं करत आप मनभावनि ।।
कहै हरिदास तबहीं चिरजीवै कुंजबिहारी चितवनि।।11।।

मन लगाय प्रीति कीजै करवासों ब्रज बीचिन न दीजे सोहनी।।
वृन्दावन सो बन उपबन सौं गुंजमाल हाथ पोहनी।।
गो गोसुतन सों मृगी मृगसुतन सौं और तन नेंक न जोहनी ।।
हरिदास के स्वामी श्यामां कुंज बिहारी सोचित ज्यों सिर पर दोहनी।।12।।
राग कल्यान
हरि कौ असोई सब खेल ।।
मृग तृष्णा जग ब्यापि रह्यों है कहूँ बिजौरौ न बेलि।।
धन मद जोवन मद राज मद ज्यौं पंछिन में डेल ।।
कहै हरिदास यहै जिय जानौ तीरथ को सौ मेल।।13।।
माई धनि वे मृगी जे कमल नैन कों पूजित अपनें अपनैं भरतारन सहित।।
धनिवे गाइ वछ वेई जे वशरस पीवत श्रवन दोना ज्यौं जाई न बहत ।।
पंछी न होंहिं मुनि जन जेते केते सेवहि दिन काम क्रोध लोभ रहित।।
सुनि हरिदास हमारे पति ते कठिन जान दे हये राखत गहत।।14।।
राग बरारी
लाल मेरे दूध की दोहनी।।
मारग जात माहि रह्यौ री अंचरा मेरौ जाहिन दंत हो बिना बोहना।।
नागरि गूजरि ठगि लीनों मेरौं लाल गोरोचन कौ तिलक भावै मोहना।।
हरिदास के स्वामी इहां असोई न्याव है या नगरी जिन बसोरी सोहनी।।15।।
राग कान्हरो
झूठी बात सांची करि दिषावत हौ हरि नागर।।
निसि दिन बुनत उधेरत हौ जाय प्रपंच कौ सागर।।
ठाठ बनाय धरयौ मिहरी कौ है पुरुषतें आगर।।
सुनि हरिदास यहै जिय जानों सुपनें कौ सौ जागर।।16।।
जगत प्रीति करि देवी नाहि नेंग टीकौ कोऊ।।
छत्रपति रंक लौ देषै प्रकृति विरोध न बन्यौ कोऊ।।
दिन जु गये बहुत जन्मन के ऐसौ जावौं जिन कोऊ।।
सुनि हरिदास मीत भलौ पायौ विहारी ऐसौ पावौ सब कोऊ।।17।।
लोग तौ भूल्यौ भलै भूल्यों तुम मति भूलौ मालाधारी।।
आपनौ पति छाँड़ि आरनि सौं राति ज्यौं दारिन में दारी।।
स्याम कहत जे जीव मोते विमुख जोको जिन दूसरी कर डारी।।
कहि हरिदास जज्ञ देवता पितरन कौ शरधा भारी।।18।।

जौलौ जीवै तौलौ हरि मज रे मन और बात सब बादि ।।
द्यौस चार के हलभला में तू कहा लेगौ लादि।।
धनमद जोवनमद राजमद भूल्यौ नगर विवादि।।
कहि हरिदास लोभ चरपट भयौ काहेकी लगै फिरादि।।19।।
प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे कैसे लागै घाट।।
बेकार्यौं दै जानि कहावत जानि पन्यौ को कहा परी वाट।।
काहू कौ सर सूधौ न परै मारत गाल गली गली हाट।।
कहि हरिदास जानि ठाकुर बिहारी तकत न ओट पाट।।20।।

सम्बंधित प्रसंग

एक बार हरिदास भगवती यमुना की रेती में बैठे हुए थे। वसन्त-ऋतु का यौवन अपनी पराकाष्ठा पर था। चारों ओर कोयल की सुरीली और मीठी कण्ठाध्वनि कुंज-कुंज में अनुपम उद्दीपन का संचार कर रही थी। लताएं कुसुमित होकर पादपों के गाढ़ालिंगन में शयन कर रही थीं। वृन्दावन के मन्दिरों में धमार की धूम थी। रसिक हरिदास का मन डोल उठा। उनके प्राणप्रिय रास-बिहारी की मनोरम दिव्यता उनके नयनों में समा गयी। वृन्दावन की चिन्मयता की आरसी में अपने उपास्य की झांकी करके वे ध्यानस्थ हो गये। उन्हें तनिक भी बाह्य ज्ञान नहीं था। वे मानस-जगत की सीमा में भगवदीय कान्ति का दर्शन करने लगे। भगवान राधारमण रंगोत्सव में प्रमत्त होकर राधारानी के अंग-अंग को कर में कनक पिचकारी लेकर सराबोर कर रहे थे। ललिता, विशाखा आदि रासेश्वरी की ओर से नन्दनन्दन पर गुलाल और अबीर फेंक रही थीं। यमुना-जल रंग से लाल हो चला था। बालुका में गुलाल और बुक्के के कण चमक रहे थे। भगवान होली खेल रहे थे। हरिदास के प्राणों में रंगीन चेतनाएं लहराने लगीं। नन्दनन्दन के हाथ की पिचकारी छूट ही तो गयी। हरिदास के तन-मन भगवान के रंग में शीतल हो गये। उनका अन्तर्देश गहगहे रंग में सराबोर था। भगवान ने भक्त को ललकारा। हरिदास ने भगवान के पीताम्बर पर इत्र की शीशी उड़ेल दी। इत्र की शीशी जिसने भेंट की थी, वह तो उनके इस चरित्र से आश्चर्यचकित हो गया। जिस वस्तु को उसने इतने प्रेम से प्रदान किया था, उसे उन्होंने रेती में छिड़ककर अपार आनन्द का अनुभव किया। रसिक हरिदास की आंखें खुलीं। उन्होंने उस व्यक्ति की मानसिक वेदना की बात जान ली और शिष्यों के साथ श्रीबिहारी जी के दर्शन के लिये भेजा।

उस व्यक्ति ने बिहारी जी का वस्त्र इत्र से सराबोर देखा, और देखा कि पूरा मन्दिर विलक्षण सुगन्ध से परिपूर्ण था। वह बहुत लज्जित हुआ, पर भगवान ने उसकी परम प्यारी भेंट स्वीकार कर ली, यह सोचकर उसने अपने सौभाग्य की सराहना की।

एक बार एक धनी तथा कुलीन व्यक्ति ने हरिदास से दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की और उन्हें पारस भेट स्वरूप दिया। हरिदास ने पारस को पत्थर कहकर यमुना में फेंक दिया और उसे शिष्य बना लिया।

अपने दरबारी गायक भक्तवर तानसेन से एक बार अकबर ने पूछा–'क्या तुमसे बढ़कर भी कोई गाने वाले व्यक्ति हैं। ' तानसेन ने विनम्रतापूर्वक स्वामी हरिदास जी का नाम लिया। अकबर ने उन्हें राजसभा में आमन्त्रित करना चाहा, पर तानसेन ने निवेदन किया कि वे कहीं आते-जाते नहीं। निधिवन जाने का निश्चय हुआ। हरिदास जी तानसेन के संगीत-गुरु थे। उनके सामने जाने में तानसेन के लिये कुछ भी अड़चन नहीं थी। रही अकबर की बात, सो उन्होंने वेष बदलकर एक साधारण नागरिक के रूप में उनका दर्शन किया। तानसेन ने जान-बूझकर एक गीत गलत राग में गाया। स्वामी हरिदास ने उसे परिमार्जित और शुद्ध करके कोकिल कण्ठ से जब अलाप भरना आरम्भ किया, तब अकबर ने संगीत की दिव्यता का अनुभव किया। तानसेन ने कहा–'स्वामी जी सम्राटों के सम्राट भगवान श्रीकृष्ण के गायक हैं। '

एक बार श्रीकृष्ण चैतन्य गौरांग महाप्रभु से वे बात कर रहे थे। ठीक उसी समय राधाकुण्ड निवासी रघुनाथदास मानसिक श्रृंगार में खोयी हुई प्रियाजी की पुष्प-वेणी खोजते उनके निकट आ पहुंचे। स्वामी जी ने अश्वत्थ वृक्ष के नीचे पता लगाकर उनकी मानसिक सेवा की, समस्त व्यवस्था का निरूपण कर दिया। स्वामी हरिदास ने रस की प्रीति-रीति चलायी, जिस पथ पर यती, योगी, तपी और संन्यासी ध्यान लगाकर भगवान के दर्शन से अपनी साधना सफल करते हैं और फिर भी उनके रूप-रस की कल्पना नहीं कर पाते, उसी को स्वामी हरिदास ने अपनाकर भगवान 'रसो वै सरू' को मूर्तिमान पा लिया। स्वामी हरिदास जी 'निम्बार्क सम्प्रदाय' के अन्तर्गत 'टट्टी सम्प्रदाय' के संस्थापक थे। संवत 1630 विक्रमी तक वे निधिवन में विद्यमान थे। वृन्दावन की नित्य नवीन भगवल्लीलामयी चिन्मयता के सौन्दर्य में उनकी रसोपासना ने विशेष अभिवृद्धि की।

माधुर्य भक्ति –

स्वामी हरिदास के उपास्य युगल राधा-कृष्ण, नित्य-किशोर, अनादि एकरस और एक वयस हैं। यद्यपि ये स्वयं प्रेम-रूप हैं तथापि भक्त को प्रेम का आस्वादन कराने के लिए ये नाना प्रकार की लीलाओं का विधान करते हैं। इन लीलाओं का दर्शन एवं भावन करके जीव अखण्ड प्रेम का आस्वादन करता है।

'कुंज बिहारी बिहारिनि जू को पवित्र रस'

कहकर स्वामी जी ने स्पट सूचित किया है कि राधा-कृष्ण का विहार अत्यधिक पवित्र है। उस विहार में प्रेम की लहरें उठती रहती हैं, जिनमें मज्जित होकर जीव आनन्द में विभोर हो जाता है। इस प्रेम की प्राप्ति उपासक को विरक्त भाव से वृन्दावन-वास करते हुए भजन करने से हो सकती है। स्वामी हरिदास जी का जीवन इस साधना का मूर्त रूप कहा जा सकता है।

राधा–कृष्ण की इस अद्‌भुत मधुर-लीला का वर्णन स्वामी हरिदास ने वन–विहार, झूलन, नृत्य आदि विभिन्न रूपों में किया है। इस लीला का महत्व संगीत की दृष्टि से अधिक है। नृत्य का निम्न वर्णन दृष्टव्य है –

अद्‌भुत गति उपजत अति नाचत,
दोउ मंडल कुँवर किशोरी।
सकल सुधंग अंग अंग भरि भोरी,
पिय नृत्यत मुसकनि मुखमोरि परिरंभन रस रोरी।। (केलिमाल रूकवित्त 34)

रसिक भक्त होने के कारण राधा-कृष्ण की लीलाओं को ही वह अपना सर्वस्व समझते हैं और सदा यही अभिलाषा करते हैं ्

ऐसे ही देखत रहौं जनम सुफल करि मानों।
प्यारे की भाँवती भाँवती के प्यारे जुगल किशोरै जानौं।।
छिन न टरौं पल होहुँ न इत उत रहौं एक तानों।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा 'कुंज बिहारी 'मन रानौं।। (केलिमाल –पद 3)

स्वामी हरिदास ने केलिमाल में केवल राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन किया है।

8

रहीम

अब्दुल रहीम 'उर्फ' 'रहीम', एक मध्यकालीन कवि, सेनापति, प्रशासक, आश्रयदाता, दानवीर, कूटनीतिज्ञ, बहुभाषाविद, कलाप्रेमी, एवं विद्वान थे। वे भारतीय साहित्य संस्कृति के अनमोल आराधक तथा सभी संप्रदायों के प्रति समादर भाव के सत्यनिष्ठ साधक थे। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न रहता था। वे एक ही साथ कलम और तलवार के धनी थे और मानव प्रेम के सूत्रधार थे।

जन्म से एक मुसलमान होते हुए भी हिंदू जीवन के अंतर्मन में बैठकर रहीम जी ने जिस माध्यम से सर्जना किये थे, उनकी विशाल हृदयता का परिचय देती हैं। हिंदू देवी-देवताओं, पर्वों, धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं का जहाँ भी आपके द्वारा उल्लेख किया गया है, पूरी जानकारी एवं ईमानदारी के साथ किया गया है। आप जीवन भर हिंदू जीवन को भारतीय जीवन का यथार्थ मानते रहे। रहीम ने काव्य में रामायण, महाभारत, पुराण तथा गीता जैसे ग्रंथों के कथानकों को उदाहरण के लिए चुना है और लौकिक जीवन के व्यवहार पक्ष को उसके द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है, जो भारतीय सांस्कृति की झलक को पेश करता है।

छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घटयौ, जो भृगु मारी लात॥

जीवन परिचय

अबदुर्ररहीम खानखाना का जन्म संवत् 1613 (ई. सन् 1556) में लाहौर में हुआ था। संयोग से उस समय हुमायूँ, सिकंदर, सूरी के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए सैन्य के साथ लाहौर में मौजूद थे।

रहीम के पिता बैरम खाँ तेरह वर्षीय अकबर के शिक्षक तथा अभिभावक थे। बैरम खाँ खान-ए-खाना की उपाधि से सम्मानित थे। वे हुमायूँ के साढ़ू और अंतरंग मित्र थे। रहीम की माँ वर्तमान हरियाणा प्रांत के मेवाती राजपूत जमाल खाँ की सुंदर एवं गुणवती कन्या सुल्ताना बेगम थी। जब रहीम पाँच वर्ष के ही थे, तब गुजरात के पाटण नगर में सन 1561 में इनके पिता बैरम खाँ की हत्या कर दी गई। रहीम का पालन-पोषण अकबर ने अपने धर्म-पुत्र की तरह किया। शाही खानदान की परंपरानुरूप रहीम को 'मिर्जा खाँ' का खिताब दिया गया। रहीम ने बाबा जंबूर की देख-रेख में गहन अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त होने पर अकबर ने अपनी धाय की बेटी माहबानो से रहीम का विवाह करा दिया। इसके बाद रहीम ने गुजरात, कुम्भलनेर, उदयपुर आदि युद्धों में विजय प्राप्त की। इस पर अकबर ने अपने समय की सर्वोच्च उपाधि 'मीरअर्ज' से रहीम को विभूषित किया। सन 1584 में अकबर ने रहीम को खान-ए-खाना की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम का देहांत 71 वर्ष की आयु में सन 1627 में हुआ। रहीम को उनकी इच्छा के अनुसार दिल्ली में ही उनकी पत्नी के मकबरे के पास ही दफना दिया गया। यह मजार आज भी दिल्ली में मौजूद हैं। रहीम ने स्वयं ही अपने जीवनकाल में इसका निर्माण करवाया था।

अकबर के दरबार में

हुमायूँ ने युवराज अकबर की शिक्षा-दिक्षा के लिए बैरम खाँ को चुना और अपने जीवन के अंतिम दिनों में राज्य के प्रबंध की जिम्मेदारी देकर अकबर का अभिभावक नियुक्त किया था। बैरम खाँ ने कुशल नीति से अकबर के राज्य को मजबूत बनाने में पूरा सहयोग दिया। किसी कारणवश बैरम खाँ और अकबर के बीच मतभेद हो गया। अकबर ने बैरम खाँ के विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया और अपने उस्ताद की मान एवं लाज रखते हुए उसे हज पर जाने की इच्छा जताई। परिणामस्वरुप बैरम खाँ हज के लिए रवाना हो गये। बैरम खाँ हज के लिए जाते हुए गुजरात के पाटन में ठहरे और पाटन के प्रसिद्ध सहस्रलिंग सरोवर में नौका-विहार के बाद तट पर बैठे थे कि भेंट करने

की नियत से एक अफगान सरदार मुबारक खाँ आया और धोखे से बैरम खाँ की हत्या कर दी। यह मुबारक खाँ ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए किया।

इस घटना ने बैरम खाँ के परिवार को अनाथ बना दिया। इन धोखेबाजों ने सिर्फ कत्ल ही नहीं किया, बल्कि काफी लूटपाट भी मचाया। विधवा सुल्ताना बेगम अपने कुछ सेवकों सहित बचकर अहमदाबाद आ गई। अकबर को घटना के बारे में जैसे ही मालूम हुआ, उन्होंने सुल्ताना बेगम को दरबार वापस आने का संदेश भेज दिया। रास्ते में संदेश पाकर बेगम अकबर के दरबार में आ गई। ऐसे समय में अकबर ने अपनी महानता का सबूत देते हुए इनको बड़ी उदारता से शरण दिया और रहीम के लिए कहा "इसे सब प्रकार से प्रसन्न रखो। इसे यह पता न चले कि इनके पिता खान खानाँ का साया सर से उठ गया है। बाबा जम्बूर को कहा यह हमारा बेटा है। इसे हमारी दृष्टि के सामने रखा करो। इस प्रकार अकबर ने रहीम का पालन–पोषण एकदम धर्म–पुत्र की भांति किया। कुछ दिनों के पश्चात अकबर ने विधवा सुल्ताना बेगम से विवाह कर लिया। अकबर ने रहीम को शाही खानदान के अनुरुप "मिर्जा खाँ' की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम की शिक्षा–दीक्षा अकबर की उदार धर्म–निरपेक्ष नीति के अनुकूल हुई। इसी शिक्षा-दीक्षा के कारण रहीम का काव्य आज भी हिंदूओं के गले का कण्ठहार बना हुआ है। दिनकर जी के कथनानुसार अकबर ने अपने दीन-इलाही में हिंदूत्व को जो स्थान दिया होगा, उससे कई गुणा ज्यादा स्थान रहीम ने अपनी कविताओं में दिया। रहीम के बारे में यह कहा जाता है कि वह धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।

विवाह

रहीम की शिक्षा समाप्त होने के पश्चात सम्राट अकबर ने अपने पिता हुमायूँ की परंपरा का निर्वाह करते हुए, रहीम का विवाह बैरम खाँ के विरोधी मिर्जा अजीज कोका की बहन माहबानों से करवा दिया। इस विवाह में भी अकबर ने वही किया, जो पहले करता रहा था कि विवाह के संबंधों के बदौलत आपसी तनाव व पुरानी से पुरानी कटुता को समाप्त कर दिया करता था। रहीम के विवाह से बैरम खाँ और मिर्जा के बीच चली आ रही पुरानी रंजिश खत्म हो गयी। रहीम का विवाह लगभग सोलह साल की उम्र में कर दिया गया था।

मीर अर्ज का पद

अकबर के दरबार के प्रमुख पदों में से एक मीर अर्ज का पद था। यह पद पाकर कोई भी व्यक्ति रातों रात अमीर हो जाता था, क्योंकि यह पद ऐसा था, जिससे पहुँचकर ही जनता की फरियाद सम्राट तक पहुँचती थी और सम्राट के द्वारा लिए गए फैसले भी इसी पद के जरिये जनता तक पहुँचाए जाते थे। इस पद पर हर दो–तीन दिनों में नए लोगों को नियुक्त किया जाता था। सम्राट अकबर ने इस पद का काम–काज सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने सच्चे तथा विश्वास पात्र अमीर रहीम को मुस्तकिल मीर अर्ज नियुक्त किया। यह निर्णय सुनकर सारा दरबार सन्न रह गया था। इस पद पर आसीन होने का मतलब था कि वह व्यक्ति जनता एवं सम्राट दोनों में सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

रहीम शहजादा सलीम

काफी मिन्नतों तथा आशीर्वाद के बाद अकबर को शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से एक लड़का प्राप्त हो सका, जिसका नाम उन्होंने सलीम रखा। शहजादा सलीम माँ–बाप और दूसरे लोगों के अधिक दुलार के कारण शिक्षा के प्रति उदासीन हो गया था। कई महान लोगों को सलीम की शिक्षा के लिए अकबर ने लगवाया। इन महान लोगों में शेर अहमद, मीर कलाँ और दरबारी विद्वान अबुलफजल थे। सभी लोगों की कोशिशों के बावजूद शहजादा सलीम को पढ़ाई में मन न लगा। अकबर ने सदा की तरह अपना आखिरी हथियार रहीम खाने खाना को सलीम का अतालीक नियुक्त किया। कहा जाता है रहीम यह गौरव पाकर बहुत प्रसन्न थे। अकबर रहीम को अपने पुत्र के समान समझते थे।

भाषा शैली

रहीम ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही कविता की है जो सरल, स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण है।

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय।।

उनके काव्य में शृंगार, शांत तथा हास्य रस मिलते हैं। दोहा, सोरठा, बरवै, कवित्त और सवैया उनके प्रिय छंद हैं। रहीम दास जी की भाषा अत्यंत

सरल है, आपके काव्य में भक्ति, नीति, प्रेम और शृंगार का सुन्दर समावेश मिलता है। आपने सोरठा एवं छंदों का प्रयोग करते हुए अपनी काव्य रचनाओं को किया है। आपने ब्रजभाषा में अपनी काव्य रचनाएं की है। आपके ब्रज का रूप अत्यंत व्यवहारिक, स्पष्ट एवं सरल है। आपने तदभव शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। ब्रज भाषा के अतिरिक्त आपने कई अन्य भाषाओं का प्रयोग अपनी काव्य रचनाओं में किया है। अवधी के ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी रहीम जी ने अपनी रचनाओं में किया है, आपकी अधिकतर काव्य रचनाएं मुक्तक शैली में की गई हैं जोकि अत्यंत ही सरल एवं बोधगम्य है।

प्रमुख रचनाएं

रहीम दोहावली, बरवै, नायिका भेद, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी, नगर शोभा, सैक्स स्टोरीज, आदि।

दोहे रहीम

अ से अं

अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल।।
अधम वचन काको फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग माँह।।
अन्तर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोइ।
कै जिय आपन जानहीं, कै जिहि बीती होइ।।
अनकीन्हीं बातैं करै, सोवत जागे जोय।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय।।
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग तें, पचवत आगि चकोर।।
अनुचित वचन न मानिए जदपि गुराइसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तें, सुजस भरत को बाढ़ि।।
अब रहीम चुप करि रहउ, समुझि दिनन कर फेर।
जब दिन नीके आइ हैं बनत न लगि है देर।।
अब रहीम मुश्किल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम।।

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि।।
अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस।।
अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि।।
असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज।
ज्यों लछमन माँगन गये, पारासर के नाज।।
आदर घटे नरेस ढिंग, बसे रहे कछु नाहिं।
जो रहीम कोटिन मिले, धिग जीवन जग माहिं।।
आप न काहू काम के, डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल।।
आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यौं, थामे बरै बरेह।।
उरग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार।।
ऊगत जाही किरन सों अथवत ताही कॉति।
त्यौं रहीम सुख दुख सवै, बढ़त एक ही भाँति।।
एक उदर दो चोंच है, पंछी एक कुरंड।
कहि रहीम कैसे जिए, जुदे जुदे दो पिंड।।
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलै फलै अघाय।।
ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िये वे रहीम अब नाहिं।।
ओछो काम बड़े करैं तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहै न कोय।।
अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय।।
अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन।।
अंतर दाव लगी रहै, धुआं न प्रगटै सोय।

कै जिय जाने आपुनो, जा सिर बीती होय।।

दोहे रहीम क से ग

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।।
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।।
कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय।।
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि मोहि समान को कूर।।
करम हीन रहिमन लखो, धँसो बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गौ भोर।।
कहा करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ की छांह।
रहिमन ढाक सुहावनै, जो गल पीतम बांह।।
कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय।।
कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात।।
कहि रहीम य जगत तैं, प्रीति गई दै टेर।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेर।।
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत।।
कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय।।
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग।।
कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय।।
कागद को सो पूतरा, सहजहि मैं घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय।।
काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।

रहिमन भँवरी के भए नदी सिरावत मौर।।
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेई।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देई।।
कहा करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ की छाँह।
रहिमन दाख सुहावनो, जो गल पीतम बाँह।।
काह कामरी पामरी, जाड़ गए से काज।
रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिलै अनाज।।
कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं।।
कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों वैर।।
कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय।
संपति के सब जात हैं, विपति सबै लै जाय।।
को रहीम पर द्वार पै, जात न जिय सकुचात।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जात।।
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम।।
खरच बढयो, उद्यम घटयो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन।।
खीरा को मुंह काटि के, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय।।
खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक लनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय।।
खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति।।
खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान।।
गरज आपनी आप सों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू, पर घर जाय लजाय।।
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव।।

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि।।
गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतोरी आहि।।

दोहे च से ज

चरन छुए मस्तक छुए, तेहु नहिं छाँड़ति पानि।
हियो छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि।।
चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय।।
चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह।।
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है, सो आवत यह देस।।
चिंता बुद्धि परेखिए, टोटे परख त्रियाहि।
उसे कुबेला परखिए, ठाकुर गुनी किआहि।।
छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहिमन हरि को घटयो, जो भृगु मारी लात।।
छोटेन सो सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख।।
जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुँन सिर चोट।।
जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय।।
ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ।।
जलहिं मिलाय रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर।।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय।।
जानि अनीती जे करैं, जागत ही रह सोइ।

ताहि सिखाइ जगाइबो, रहिमन उचित न होइ।।
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह।।
जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।
जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढि।।
जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दोहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं।।
जेहि अंचल दीपक दुर्यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात।।
जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन।।
जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताकों बुरा न मानिए, लेन कहाँ सो जाय।।
जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती पर ही परत है, शीत घाम औ मेह।।
जैसी तुम हमसों करी, करी करो जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर।।
जो अनुचितकारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम।।
जो घर ही में घुस रहे, कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनतें भले, पथ के अपत करील।।
जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम।।
जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाँहि।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं।।
जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पारतें, सो रहीम बहि जाय।।
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग।।

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ों टेढ़ो जाय।।
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ कहो कर पर धर्यो, गोवर्धन गोपाल।।
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय।।
जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय।।
जो रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन कमल की ओट।।
जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट।।
जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रायबो, आँस गारिबो खीस।।
जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं।।
जो रहीम मन हाथ है, तो मन कहुं किन जाहि।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीजत नाहिं।।
जो रहीम भावी कतौं, होति आपुने हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।।
जो रहीम होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ।।
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटाय।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खाय।।
जो विषया संतन तजो, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सो खात।।

दोहे ट

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार।।

दोहे त से न

तन रहीम है कर्म बस, मन राखो ओहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर।।
तब ही लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम।।
तरुवर फल नहिं खात हैं, सरबर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान।।
तासों ही कछु पाइए, कीजै जाकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझे पियास।।
तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब हिद ठहराइ।
उमड़ि चलै जल पार ते, जो रहीम बढ़ि जाइ।।
तैं रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचंद्र की ओर।।
तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा, नमी माँहि खुल जाय।।
थोथे बादर क्वाँर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करै पाछिली बात।।
थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय।।
दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हूँ, सरवर को कोउ नाहिं।।
दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीनबन्धु से बन्धु।।
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय।।
दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं।।
दुख नर सुनि हाँसी करै, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर।।
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि।।

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि।।
देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरें, याते नीचे नैन।।
दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहिं।।
धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँह समात।।
धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोउ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त।।
धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन हे, जगत पिआसो जाय।।
धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह।।
धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज।।
नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग।।
नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि।।
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत।।
निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भाव के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ।।
नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन।।

दोहे प से म

पन्नग बेलि पतिव्रता, रति सम सुनो सुजान।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान।।
परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।

बामन है बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस।।
पसरि पत्र झँपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत।।
पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन।।
पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन।।
पिय बियोग तें दुसह दुख, सूने दुख ते अंत।
होत अंत ते फिर मिलन, तोरि सिधाए कंत।।
पुरुष पूजें देवरा, तिय पूजें रघुनाथ।
कहँ रहीम दोउन बनै, पँड़ो बैल को साथ।।
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय।।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।
रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलिबो पाठक माहिं।।
फरजी सह न ह्य सकै, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चालसों, प्यादो होत वजीर।।
बरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै बसिबो उचित न योग।।
बहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत।।
बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिय बलाय।।
बड़े दीन को दुख सुनो, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सो कब हुतो, कहु रहीम पहिचानि।।
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि।।
बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ।।
बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल।।

बढ़त रहीम धनाढय धन, धनौ धनी को जाइ।
घटै बढ़ै बाको कहा, भीख माँगि जो खाइ।।
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस।।
बाँकी चितवन चित चढ़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गाँसी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त रहीम।।
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय।।
बिधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलि हैं, तानसेन के तान।।
बिपति भए धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भए भोर।।
बिरह रूप धन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत।।
भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान।।
भलो भयो घर ते छुटयो, हँस्यो सीस परिखेत।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत।।
भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मझधार में, जिनके सिर पर भार।।
भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान।।
भावी या उनमान को, पांडव बनहि रहीम।
जदपि गौरि सुनि बाँझ है, बरु है संभु अजीम।।
भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम।।
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिर तें भूमि लौं, लखों तो एकै रूप।।
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय।।
मनिसिज माली की उपज, कहि रहीम नहिं जाय।

फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय।।
मन से कहाँ रहिम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान।।
मंदन के मरिहू गये, औगुन गुन न सिराहिं।
ज्यों रहीम बाँधहु बँधे, मराह ह्वै अधिकाहिं।।
मनि मनिक महँगे किये, ससतो तृन जल नाज।
याही ते हम जानियत, राम गरीब निवाज।।
महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष।।
माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करो, तऊ बावनै नाम।।
माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ।।
मान सरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक-बालकनहिं जोग।।
मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस।।
माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और।
त्यों रहीम जग जानिये, छुटे आपुने ठौर।।
मीन कटि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
रहिमन प्रीति सराहिये, मुयेउ मीन कै आस।।
मुकता कर करपूर कर, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन विष होय।।
मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग।।
मूढ़ मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेषि।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देखि।।

दोहे य से व

यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीति।।

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय।।
यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर, कमान के, नये ते अवगुन होय।।
याते जान्यो मन भयो, जरि बरि भस्म बनाय।
रहिमन जाहि लगाइये, सो रूखो ह्वै जाय।।
ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु।
ज्यों तिय कुच आपुन गहे, आप बड़ाई आपु।।
ये रहीम दर-दर फिरै, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छाँडि देउ, वे रहीम अब नाहिं।।
यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार।।
यों रहीम तन हाट में, मनुआ गयो बिकाय।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नॉय।।
यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सो, अथवत ताही भाँति।।
रन, बन, ब्याधि, विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गये कि सोय।।
रहिमन अती न कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सैजन अति फूले तऊ डार पात की हानि।।
रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह।
मूग उछरत आकाश को, भूमी खनत बराह।।
रहिमन अपने पेट सौ, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अन खाये रहे, तासों को अनखाय।।
रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छॉह गंभीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड़, कुंज, करीर।।
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बानसों, रुधिरे देत बताय।।
रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।
रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति।

घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति।।
रहिमन उजली प्रकृत को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग।।
रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, वीचन परे पहार।।
रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटै स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति।।
रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत।।
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस।।
रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक।।
रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रहते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ।।
रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करत डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की हूक।।
रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति-राखनहार हैं, माखन-चाखनहार।।
रहिमन खोजे ऊख में, जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति में हानि।।
रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय।।
रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं।।
रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ।।
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ।।
रहिमन छोटे नरन सो, होत बड़ो नहीं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम।।

रहिमन जगत बड़ाई की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि।।
रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दशानन अछत ही, कपि लागे गथ लेन।।
रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल आकाश लौं, क्यो न कालिमा होय।।
रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिय कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय।।
रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल।।
रहिमन जो तुम कहत थे, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रमसरा, रस काहे ना होय।।
रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाँव।
जो बासर को निस कहै, तौ कचपची दिखाव।।
रहिमन ठहरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि को धूरि।।
रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान।।
रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि।।
रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय।।
रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुँह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को ब्याह।।
रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाँचबे योग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुआँ खनावत लोग।।
रहिमन दुरदिन के परे, बड़े न किए घटि काज।
पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नल राज।।
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि।।
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।

टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ परि जाय।।
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े तो गांठ पड़ जाय।।
रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम।।
रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय।।
रहिमन निज संपति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय।
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि।।
रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चोरावै संपुटी, मारु सहै घरिआर।।
रहिमन पर उपकार के, करत न यारी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच।।
रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून।।
रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन।।
रहिमन पेटे सों कहत, क्यों न भये तुम पीठि।
भूखे मान बिगारहु, भरे बिगारहु दीठि।।
रहिमन पैंड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलिका, लोग लदावत बैल।।
रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून।।
रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाय बजाय।।
रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ।।
रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन को नाहिं।
जे जानत ते कहत नाहिं, कहत ते जानत नाहिं।।

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम।।
रहिमन बिपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय।।
रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात।।
रहिमन मनहिं लगाइ के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय।।
रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मझाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव।।
रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होत अनूप।
बलि मख माँगत को गए, धरि बावन को रूप।।
रहिमन यहि न सराहिये, लैन दैन कै प्रीति।
प्रानहिं बाजी राखिये, हारि होय कै जीति।।
रहिमन यहि संसार में, सब सौं मिलिये धाइ।
ना जानैं केहि रूप में, नारायण मिलि जाइ।।
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात।।
रहिमन या तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर।।
रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत।।
रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस किहि काम को रहिबो आपुहि आप।।
रहिमन रहिबो वा भलो, जो लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच।।
रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैलो करे, सो मैदा जरि जाय।।
रहिमन राज सराहिए, ससिसम सूखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयन खोय।।
रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय।

पसु खर खात सवादसों, गुर गुलियाए खाय।।
रहिमन रिस को छाँड़ि कै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस।
रहिमन रिस सहि तजत नहीं, बड़े प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरी।।
रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय।।
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअत हू, साँप सहज धरि खाय।।
रहिमन वहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत।।
रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करी होरी रची, भई तनिक में छार।।
रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम, जस, दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिनु पूँछ बिषान।।
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।।
रहिमन सीधी चाल सों, प्यादा होत वजीर।
फरजी साह न हुइ सकै, गति टेढ़ी तासीर।।
रहिमन सुधि सबतें भली, लगै जो बारंबार।
बिछुरे मानुष फिरि मिलें, यहै जान अवतार।।
रहिमन सो न कछू गनै, जासों, लागे नैन।
सहि के सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन।।
राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि।।
राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहिं आपुनो, जनम गँवायो बादि।।
रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत।।
रूप, कथा, पद, चारु, पट, कंचन, दोहा, लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्मगति, मोल रहीम बिसाल।।

रूप बिलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लगि जाय।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छौड़ाय छोड़ाय।।
रोल बिगाड़े राज नै, मोल बिगाड़े माल।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल।।
लालन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।।
लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरु स्थान।।
लोहे की न लोहार का, रहिमन कही विचार।
जो हनि मारे सीस में, ताही की तलवार।।
वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी संग।
बाँटनेवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग।।

दोहे स से ह

सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम।।
सब को सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम।।
सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहँ जाय।
रहिमन सेल्ह जोई सहै, सो जागीरैं खाय।।
समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान।।
समय परे ओछे बचन, सब के सहै रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम।।
समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जाय।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछिताय।।
समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक।।
सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम।।
सर सूखे पच्छी उड़ै, औरे सरन समाहिं।

दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं।।
स्वारथ रचन रहीम सब, औगुनहू जग माँहि।
बड़े बड़े बैठे लखौ, पथ रथ कूबर छाँहि।।
स्वासह तुरिय उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त।।
साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान।
रहिमन साँचौ सूर को, बैरी करै बखान।।
सौदा करो सो करि चलौ, रहिमन याही बाट।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरी जान है बाट।।
संतत संपति जानि कै, सब को सब कुछ देत।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत।।
संपति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं।।
ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर, सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटी रहीम मन आय।।
ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम।।
सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रबि को कहा, जो घटि लखै उलूक।।
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि अपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर।।
हरी हरी करुना करी, सुनी जो सब ना टेर।
जब डग भरी उतावरी, हरी करी की बेर।।
हित रहीम इतऊ करै, जाकी जिती बिसात।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात।।
होत कृपा जो बड़ेन की सो कदाचि घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो न जाय।।
होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर।।

❐❐❐